ओ३म्

वर्षम् - १२, अङ्कः - १४७

पौष-माघमासौ-२०७७

जनवरीमासः-२०२१

आर्ष-ज्योतिः

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास का द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

अर्चन्नु स्वराज्यम्

- ऋग्वेद १/८०/१

गणतन्त्र-दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

प्रसारणकार्यालयः

श्रीमद्दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्, पौन्धा, देहरादूनम्

9411106104, 9411310530, 8810005096

arsh.jyoti@yahoo.in gurukulpondhadehradun www.pranwanand.org

गुरुकुल पौन्धा देहरादून के आचार्य डॉ. धनञ्जय जी को गुरुकुल महाविद्यालय नर्मदापुरम्, होशंगाबाद (म.प्र.) के वार्षिकोत्सव पर 'वैदिकविद्वत्सम्मान' से सम्मानित किया गया।

गुरुकुल पौन्धा देहरादून के सुयोग्य स्नातक डॉ. अजीत कुमार को दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर नियुक्त होने पर गुरुकुल परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ...

❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का

द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

पौष-माघमासौ, विक्रमसंवत्-२०७७ / सितम्बर-२०२१, सृष्टिसम्वत्-१,९६,०८,५३,१२१

वर्षम्-१२ :: अङ्कः-१४७ मूल्यम्-रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

प्रो.देवीप्रसादत्रिपाठीवर्याः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

डॉ. रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖व्यवस्थापकाः❖

ब्र. आकाशार्यः

ब्र. सुधांशुः

❖कार्यालयः❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौन्धा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ०९४१११०६१०४,८८१०००५०९६

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	पृष्ठः
आर्य्याभिविनयः	२
सम्पादकीय	३
दान दिये धन ना घटे	७
वैदिक सोम	१०
महाभाष्य का ज्योतिष विषयक एक प्रसङ्ग	१२
आर्य देश भक्तों की उपेक्षा	१५
ऋषि दयानन्द द्वारा वेदोद्धार सहित अन्धविश्वास...	२०
योगदर्शनशिक्षणम्	२३
जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी	२४

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशनतिथि-३ जनवरी २०२१ :: डाकप्रेषणतिथि-८ जनवरी २०२१

आर्य्याभिविनयः

(११)

ऋषिः- अङ्गिरसः सव्यः। **देवता**-इन्द्रोदेवता। **छन्दः**-निचृत्त्रिष्टुप्। **स्वरः**-धैवतः।

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥

ऋग्वेद १/५२/१२॥

त्वम्। अस्य। पारे। रजसः। विऽओमनः। स्वभूतिऽओजाः। अवसे। धृषत्ऽमनः। चकृषे। भूमिम्। प्रतिऽमानम्। ओजसः। अपः। स्वरितिति स्वः। परिऽभूः। एषि। आ। दिवम्॥

अन्वयः-

हे धृषन्मनो जगदीश्वर! यः परिभूः स्वभूत्योजास्त्वमवसे संसारस्य रजसो व्योमनः पारेऽप्येषि त्वं सर्वेषामोजसः पराक्रमस्य स्वभूमिं चाप्रतिमानमाचकृषे समन्तात् कृतवानसि तं (सर्वे) वयमुपास्महे॥

आर्याभिविनयः-

हे परमैश्वर्यवन् परात्मन्! **(रजसः व्योमनः पारे)** आकाश लोक के पार में तथा भीतर **(स्वभूत्योजाधृषन्मनः)** अपने ऐश्वर्य व बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण- तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के **(अवसे)** सम्यक रक्षण के लिए। **(त्वम्)** आप सावधान हो रहे हो। इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं। किञ्च **(दिवम्)** परमाकाश **(भूमिम्)** भूमि तथा **(स्वः)** सुखविशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को **(ओजसः)** अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो। **(परिभूः एषि)** सब के ऊपर वर्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो। **(आ दिवम्)** द्योतनात्मक सूर्यादिलोकः **(अपः)** अन्तरिक्षलोक और जल इन सबके **(प्रतिमानम्)** परिमाणकर्ता आप ही हो। तथा आप अपरिमेय हो। कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिए॥

पदार्थः-

(त्वम्) परमेश्वरः **(अस्य)** संसारस्य क्लेशेभ्यः **(पारे)** अपरभागे **(रजसः)** पृथिव्यादिलोकानाम् **(व्योमनः)** आकाशस्य। अत्र **वाच्छन्दसि सर्वो विधयो भवन्ति** इत्यल्लोपो न भवति। **(स्वभूत्योजाः)** स्वकीया भूतिमैश्वर्यमोजः पराक्रमो वा यस्य सः **(अवसे)** रक्षणाय **(धृषन्मनः)** धृषद्धृष्यते मनः सर्वस्यान्तःकरणं येन तत्सम्बुद्धौ **(चकृषे)** कृतवानसि **(भूमिम्)** सर्वाधारं क्षितिम् **(प्रतिमानम्)** प्रतिमीयते परिणीयते प्रतिक्रियते येन तत् **(ओजसः)** पराक्रमस्य **(अपः)** प्राणान् **(स्वः)** सुखमन्तरिक्षं वा **(परिभूः)** यः परितः सर्वतो भवति स **(एषि)** प्राप्नोषि **(आ)** समन्तात् **(दिवम्)** विज्ञानप्रकाशम्॥

संस्कृताभिविनयः-

हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आकाशलोकस्य पारे तथाभ्यान्तरे स्वैश्वर्यबलाभ्यां विराजमानो भूत्वा दुष्टमनांसि तिरस्कुर्वन् सकलजगतस्तथा विशेषेणास्माकं सम्यग्रक्षणाय भवान् दत्तावधानोऽस्ति। अनेन वयं निर्भयाः सन्तोऽऽनन्दम् अनुभवामः। किञ्च परमाकाशं भूमिं सुखविशेषं मध्यस्थलोकञ्चैतान्सर्वान् स्वसामर्थ्येनैव रचयित्वा यथावद् धारयति। सर्वोपरिवर्त्तमानः सर्वेभ्यश्च प्राप्तोऽस्ति। द्योतमानस्य सूर्यादिलोकस्यान्तरिक्षलोकस्य जलस्य चैतेषां सर्वेषां परिमाणकर्त्ता भवान्नेवास्ति। तथा च भवान्नपरिमेयोऽस्ति। कृपयास्मभ्यं स्वकीयसृष्टेश्च विज्ञानं प्रदीयताम्॥

- शिवकुमारः, गुरुकुलपौन्धा, देहरादूनम्

सम्पादक की कलम से...

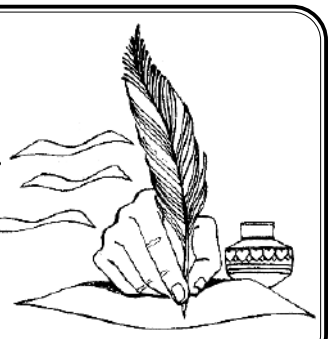

वर्त्तमान पीढ़ी के लिए
संस्कारों की उपयोगिता

संस्कार का अर्थ है किसी वस्तु के रूप को बदल देना, उसे एक नया रूप प्रदान कर देना। हमारी वैदिक संस्कृति के सोलह संस्कार इसी प्रकार मानव जीवन को एक नया परिष्कृत रूप प्रदान करते हैं। जैसे सुनार अशुद्ध स्वर्ण को आग में जलाकर शुद्ध स्वर्ण बनाता है, बस इसी प्रकार इन संस्कार रूपी भट्टी में तप कर सद्गुणों से युक्त एक सम्पूर्ण मानव का निर्माण होता है।

''संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते''

महर्षि चरक ने कहा - संस्कार पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उसकी जगह सद्गुणों का आधान कर देने का नाम है। इस प्रकार संस्कार का मुख्य उद्देश्य मानव का नव निर्माण करना है।

सृष्टि का आदि नियम है कि जब भी किसी वस्तु का निर्माण प्रारम्भ होता है उसके साथ ही उसको सुचारु रूप से विकसित करने के लिये कुछ नियम, कुछ सिद्धान्त प्रारम्भ हो जाते हैं -

उदाहरण के तौर पर माली एक बीज लगाता है उस बीज के साथ ही वह विचार करने लगता है कि इस बीज को मिट्टी चाहिये? कितनी खाद चाहिये? कितना पानी चाहिये? किस समय चाहिये? कितनी मात्रा में चाहिये, इन सब नियमों का पालन यदि सुचारु रूप से होगा तो कोई शक नहीं वह नन्हा सा बीज एक दिन पुष्पित व पल्लवित होकर चारों ओर अपनी सुगन्ध से सबका मन मोह लेगा।

एक कुम्हार है उसके पास सिर्फ गीली मिट्टी का एक गोला है, उसे वो चाक पर रखता है, चाक को घुमाता है, कभी उससे दिया बनाता है तो उसी मिट्टी से कभी गमला, कभी मटका, कभी सुन्दर मूर्ति। एक नियम से चलकर एक संस्कारित ढंग से कार्य करने पर, परिणाम सुन्दर और सुनियोजित रूप में हमारे सम्मुख आते हैं।

मानव उस परमपिता परमात्मा की श्रेष्ठतम कृति है। क्या उसका निर्माण यों ही बिना किसी नियम, बिना किसी संस्कार के सम्भव हो सकता है? नहीं! क्योंकि बिना संस्कार के वह बढ़ तो सकता है, साल दर साल उसका जीवन आगे तो चलता रहेगा, लेकिन परिणाम होगा, जैसे बिना ज्ञान के माली का बीज रोपित करना, बिना ज्ञान के कुम्हार का मिट्टी से वस्तु का निर्माण करना, बिना ज्ञान के किसी भवन का निर्माण करना। आप सब कल्पना कर सकते हैं कि इसका परिणाम कैसा होगा?

उस दयालु प्रभु ने अपने अमृत पुत्र पुत्रियों को यों ही बिना पूर्ण ज्ञान के उत्पन्न नहीं किया, उसकी उत्पत्ति से पहले ही ऋषि मुनियों के द्वारा ज्ञान का भण्डार कहे या जीवन जीने की कला कहें या जीवन का संविधान कहें मेरे परमपिता परमात्मा ने पहले ही पृथ्वी पर भेज दिये और वह थे चार वेद - इनमें मानव बनने का सम्पूर्ण ज्ञान था - उसी भंडार में से ऋषिवर दयानन्द ने मानव को मानव ही नहीं श्रेष्ठतम मानव कैसे बनाया जाये, कैसे धरती में बीज रोपा जाये, कैसे उसे संस्कारों का उचित खाद पानी दिया जाए, कैसे उसका प्यार, ममता की शीतल छाया दी जाए, कैसे उस पर प्रताड़ना की धूप से उसे सही दिशा में आगे बढ़ाया जाए बस! आज इन्हीं संस्कारों की हमें फिर से अत्यन्त आवश्यकता महसूस हो रही है,

विशेषकर आज की वर्तमान पीढ़ी को, जो कि आज उचित संस्कार, व्यवहार, सही देखरेख न मिलने से, आगे तो बढ़ रही है, लेकिन कहीं न कहीं गलत दिशा की तरफ भटक भी रही है।

थोड़ा गौर करें, थोड़ी तुलना करें, आज से एक पीढ़ी पूर्व की, तथा आज की पीढ़ी की, मेरे माता-पिता मुझे प्रातःकाल जगाते थे, प्रार्थना के मन्त्र बुलवाते थे, प्रातः सायं बड़ों को वन्दन करना है सिखाते थे - आज के माता-पिता टी.वी. पर कार्टून लगाकर, सूर्योदय के पश्चात् फिल्मी गानों की ऊँची आवाज में अपने लाडलों को जगाते हैं यहाँ जरूरत नहीं अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि वर्तमान पीढ़ी को संस्कारित किया जाए - अभी भी समय है कि हम अपने ऋषि मुनियों की बताई हुई शिक्षा पर अमल करके, आने वाली पीढ़ी को फिर से वैदिक संस्कारों से संस्कृत कर उसकी सुगन्ध देश देशान्तर में फैला सकें।

अब ये समझें कि संस्कार क्या है? आदि शंकराचार्य लिखते हैं **''संस्कारो दोषापनयनं वा गुणाधानं वा''** अर्थात् इस जन्म तथा पूर्व जन्मों के दोषों को दूर कर शारीरिक मानसिक और आत्मिक सभी गुणों को धारण करना ही संस्कार है। विविध समयों में किये जाने वाले संस्कारों से पवित्र व शुचि होकर अपने कर्तव्यों की पूर्ति सुचारु रूप से करते रहे, अतः ऋषिवर दयानन्द ने सभी संस्कार समय-समय पर विधि पूर्वक किये जाने पर बल दिया। वह सोलह संस्कार इस प्रकार हैं -

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म (मुण्डन), कर्ण भेद, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ संस्कार, संन्यास संस्कार, अन्त्येष्टि विधि संस्कार।

संक्षेप में इन संस्कारों के विषय में आपके सम्मुख रखना चाहूँगी -

गर्भाधान का अर्थ है - संयम को तैयार कर उस आनेवाली सन्तति के लिए स्वयं को संस्कारित करना सन्तान रूपी बीज के लिए भूमि तैयार करना। हमारे पूर्वज स्वाध्याय, यज्ञ, व्रत, पूजा इत्यादि के द्वारा स्वयं को पवित्र करके फिर उचित समय पर गर्भ धारण करते थे, आज की पीढ़ी को तो यह पता भी नहीं होगा कि ये भी कोई संस्कार है। पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कारों के द्वारा गर्भस्थ शिशु की श्रेष्ठ देखभाल प्रारम्भ हो जाती है। गर्भावस्था में जैसे माता के विचार, खानपान, सत्संग होगा बालक वही संस्कार लेकर उत्पन्न हो। हमारी आधुनिक पीढ़ी इससे सर्वथा अनभिज्ञ है। आज गर्भावस्था में नारी मारधाड़ व अश्लील फिल्म देखती हैं, स्वास्थ्य के नाम पर उपन्यास व गन्दे साहित्य पढ़ती है, उसी का परिणाम है कि आज स्थान-स्थान पर बलात्कार-अत्याचार, माता-पिता के साथ दुर्व्यवहार आदि शर्मसार घटनाएं होती हैं।

जातकर्म संस्कार द्वारा पिता या परिवार का कोई बुर्जुग नवजात शिशु के कान में ओ३म् बोलता है और पहला शब्द शिशु को सुनाई देता है परमपिता परमात्मा का नाम ओम्। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण यही है कि हे मेरे नन्हे बालक! आज तुमने इस धरती पर जन्म लिया है, आज से तुम्हारे जीवन का आधार यह ओम् होगा, सब कुछ भूल जाने पर भी इस ओम् नाम को सदा हृदय में रखना। कितनी सुन्दर भावनाओं से ओतप्रोत है यह संस्कार - क्या हम भूल गए इन्हें। आज के भौतिक युग में इनकी महत्ता और भी बढ़ गई है।

नामकरण - इस संस्कार का अर्थ है कि बच्चे को श्रेष्ठ, सुन्दर अर्थ वाला नाम देना क्योंकि नाम का भी बच्चे के जीवन पर असर पड़ता है। ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि बच्चे का नाम सार्थक होना चाहिये क्योंकि यह नाम सारी आयुपर्यन्त उसकी पहचान होगा।

अन्नप्राशन - अन्नप्राशन संस्कार द्वारा - यह समझाया जाए कि कब खिलाना है? क्या पिलाना है? कितना खिलाना है? आज हमारी पीढ़ी का यदि सबसे गलत है तो खानपान ही है - बालक को घी, दूध, दही,

शहद, भात आदि पौष्टिक पदार्थ दिये जाए ताकि पुष्ट शरीर, स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण हो सके।

उपनयन संस्कार - इस संसार को तो आज की पीढ़ी भूल ही गई है, जब कि यह हमारे आर्यत्व का चिन्ह है। बिना यज्ञोपवीत के व्यक्ति शुद्र होता था। हम इतिहास उठाकर देखें तो हमारे पूर्वजों, राम, कृष्ण ऋषि मुनियों के गले में यज्ञोपवीत सुशोभित है। यज्ञापवीत संस्कार के अवसर पर बालक को अग्निव्रत - सदैव ऊपर उठने व उन्नति करने, वायुव्रत - प्रगति पथ पर बढ़ते रहने, सूर्यव्रत - तेजस्वी व प्रकाशवान् होने, चन्द्रव्रत - सोम्य स्वभाव युक्त होने के संकल्प कराये जाते थे।

उसे तीन धागों का महत्व समझाया जाता था। देव, ऋषि और पितृऋण से उऋण होने की प्रतिज्ञा करता है। आज अधिकांश व्यक्ति इस संस्कार की उपेक्षा कर रहे हैं। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार विवाह संस्कार भी आज सिर्फ खानापूर्ति बनकर रह गया है। संस्कार प्रारम्भ होने से पूर्व ही पुरोहित जी को कह दिया जाता है कि पंडित जी जल्दी से एक घंटे के अन्दर विवाह सम्पन्न करा देना। पंडित जी भी बस अपनी ड्यूटी समाप्त कर देते हैं। आज के बालक-बालिका क्रिया तो करते हैं पर उन्हें अर्थ नहीं पता कि क्यों गौदान किया, क्यों शिला पर कन्या का पैर रखा, क्यों खीलों की आहुति दी, क्यों सप्तपदी की, क्यों मंत्र बुलवाये गये - **ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चितम् अस्तु**। बस एक मशीन की तरह क्रिया करके सब समाप्त हो जाता है।

वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम संस्कारों की उपयोगिता आज अधिक महसूस हो रही है, क्योंकि माता-पिता जीवन के अंतिम क्षणों तक भौतिक पदार्थों तथा सन्तानों का मोह नहीं छोड़ पाते हैं आसक्ति में डूबे रहते हैं, जबकि हमारी वैदिक संस्कृति कहती है गृहस्थ सम्बन्धी दायित्व से निवृत्त होकर जीवन का शेष समय स्वाध्याय व साधना हेतु व्यतीत करना ही वानप्रस्थाश्रम है। संन्यास आश्रम के लिए ऋषि दयानन्द लिखते हैं - ''संन्यास संस्कार उसको कहते हैं जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ कर रिक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकारार्थ विचरें'' लेकिन आज का मानव जीवन की अन्तिम सांस तक धनोपार्जन, मोह माया में फंसा रहता है और यही कहीं-कहीं पारिवारिक कलह का कारण बन जाते हैं।

इस प्रकार अन्त समय तक आसक्ति में फंसे रहने वाले व्यक्तियों की मृत्यु अत्यन्त दु:खदायी हो जाती है - वह मृत्यु का आलिंगन ऋषियों की तरह हंसते मुस्कराते - ''प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो'' कह कर संतोष से प्राण नहीं त्याग सकते।

अन्त्येष्टि के पूर्व के १५ संस्कार आज की पीढ़ी को पूर्ण रूपेण कराये जाये तो अंतिम संस्कार भी पूर्ण संतोष के साथ हो। यदि अर्थी पर जाने से पूर्व जीवन का अर्थ समझ लिया जाए तो जीना सार्थक हो जाए।

आज संसार में मानव देहधारी प्राणी ही अशांति का कारण बने हुए है, इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है? ईट पत्थरों को एकत्रित कर कोई ये कहे कि हम प्रगति कर रहे हैं, तो हमारी सृष्टि में वे वास्तविकता से बहुत दूर हैं। कितना बड़ा आश्चर्य है भवन विशाल बन रहे हैं और हृदय संकीर्ण हो रहे हैं। मार्ग अच्छे बनाये जाते हैं पर चलने वाले पथभ्रष्ट हो रहे हैं। विद्युत् का प्रकाश जयों ज्यों बढ़ रहा है त्यों त्यों अज्ञान अंधकार फैलता जा रहा है आखिर ये स्थिति क्यों है? क्योंकि आज का मानव उत्तम संस्कारों से युक्त नहीं है। अत: वर्तमान युग में सर्वप्रथम और सर्वोपरि है कि बालक को जन्म के साथ ही संस्कारों से संस्कारित किया जाए। यदि प्रत्येक माता-पिता इस तरह ध्यान दे तो संसार में पुन: सुख शांति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

भविष्य में राष्ट्र की बागड़ोर जिसके हाथों में आई है, उन्हें आज से ही संस्कारवान् बनाना होगा - क्योंकि यही बालक बालिकाएँ बड़े होकर आचार्य, अध्यापक, उपदेशक सेनापति, सैनिक, प्रहरी, व्यापारी, उद्योगपति, कृषक, राजनेता बनेंगें। यदि यह संस्कारों से संस्कारित होंगे तो मानवता पर बड़ा उपकार होगा वरना संस्कार विहीन एवं कुसंस्कारियों

के कारनामे आज सर्वत्र दिखाई दे रहे हैं।

इतिहास साक्षी है इस धराधाम पर सुसंस्कारों से वंचित अथवा कुसंस्कारी मानव तनधारी प्राणी ही अशान्ति के कारण बने हैं। उत्तम संस्कारों के अभाव का परिणाम वर्तमान में हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आज अधिकांश परिवार और राष्ट्र, अशांति से ग्रसित हो रहे हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक मूल की भूल को नहीं सुधारा जायेगा तब तक अपेक्षित सफलता प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। ऋषिवर दयानन्द का संस्कार पद्धति का स्वप्न मानव का ही रुपान्तरण नहीं था, अपितु मानव के रुपान्तरण के द्वारा हर दो दशक के बाद युग को ही बदल देना था। आज जो बच्चे जन्म लेते हैं। बीस बरस बाद वे युवा हो जाने वाले हैं। पुरानी पीढ़ी का स्थान वही लेंगे, इसलिए जैसे उनके संस्कार होंगे वैसा ही युग होगा। जिस प्रकार के युवकों का आज हम निर्माण कर रहे हैं, २० साल बाद वे समाज के कर्ता धर्ता होंगे। अगर संस्कार पद्धति के रहस्य को समझकर हर माता-पिता प्रण कर ले कि वे ऐसे संस्कारों का आधान करेंगे जिससे वे उनसे उत्कृष्ट कोटि के होंगे तो हर बीस पच्चीस साल के बाद एक नई पीढ़ी का, एक नए युग का आगमन होगा।

मनुष्य को बिल्कुल दिल देने, उसमें पूर्ण परिवर्तन कर देने का जो प्रयास वैदिक संस्कृति में किया गया था उनमें दो चार नहीं पूरे सोलह संस्कार हैं। अत: वर्तमान की पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय स्थितियों को देखते हुए यदि हम फिर से रामराज्य व वैदिक संस्कृति की स्थापना करना चाहते हैं तो वर्तमान पीढ़ी को संस्कारों से संस्कृत करना ही पड़ेगा, इसके अलावा कोई अन्य विकल्प न था, न होगा।

-शिवदेव आर्य,
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा
स्नातक/स्नातिका पंजीकरण

(गुरुकुलों से अधीत समस्त छात्र/छात्राओं के निमित्त)

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा समस्त गुरुकुलों से अधीत छात्र/छात्राओं, स्नातक/स्नातिकाओं (व्रतस्नातक, विद्यास्नातक, विद्याव्रतस्नातक) का विवरण एकत्रित किया जा रहा है, जिससे भविष्य में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों को आप तक सरलता से प्रेषित किया जा सके। अत: आप सभी से निवेदन है कि अविलम्ब प्रपत्र पूर्ण करें तथा अपने मित्रों को भी इस प्रपत्र को पूर्ण करने के लिए प्ररित करें। प्रपत्र का लिंक 9411106104 (आचार्य डॉ. धनंजय) तथा 8810005096 (शिवदेव आर्य) से प्राप्त कर सकते हैं।

आपको सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि भारत के समस्त गुरुकुलों को एक पोर्टल पर देखने के लिए श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा वेबसाईट का निर्माण प्रगतिपथ पर है।

- स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, अध्यक्ष (वैदिक गुरुकुल न्यास)

दान दिये धन ना घटे

(दान प्रशंसा सूक्त)

❑ प्रो. रामप्रसाद वेदालङ्कार...✍

क्रमशः ...

ऋग्वेद : मण्डल-१०, सूक्त-११७, मन्त्र-२

ऋषिः-भिक्षुः। देवता-धनान्नदानप्रशंसा।

य आध्राय चकमानाय पीत्वोऽन्नवान्त्सन्
रफितायोपजग्मुषे। स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो
चित्स मर्डितारं न विन्दते॥२॥

अन्वयः - यः अन्नवान् सन् आघ्राय, पित्वः चकमानाय, रफिताय, उपजग्मुषे मनः स्थिरं कृणुते। उत उ पुरा चित् सेवते। स मर्डितारं न विन्दते।

सं० अन्वयार्थः - जो अन्नों-खाद्य पदार्थों वाला होता हुआ भी आध्र-अन्न की कामना करने वाले हिंसित एवं अपने पास आये हुए व्यक्ति के लिये अपने मन को स्थिर कठोर कर लेता है और उसके सामने खाता रहता है, वह अपने को सुख देने वाले को नहीं पाता।

अन्वयार्थः - (यः अन्नवान् सन्) जो अन्न आदि खाद्य पदार्थों से सम्पन्न होता हुआ भी (आध्राय) धारण-पोषण करने के योग्य अत्यन्त दुर्बल-निर्बल-निर्धन के लिए (पित्वः चकमानाय) अन्न की इच्छा करने वाले बुभुक्षित-भूखे भिक्षुक के लिए, (रफिताय) हिंसित-पीड़ित-व्यथित-दुःखी मनुष्य के लिए, (उपजग्मुषे) अपने घर पर बड़ी आशा लेकर आये हुए अतिथि के लिये, (मनः स्थिरं कृणुते) अपने मन को स्थिर-कठोर कर लेता है, अर्थात् वह इन पर द्रवित नहीं होता, (उत उ पुरा चित् सेवते) प्रत्युत उनके सम्मुख ही अन्नादि पदार्थों का सेवन करता है। उनके सामने ही खाता रहता है (सः मर्डितारं न विन्दते) वह कठोर हृदय पुरुष आने वाले समय में कभी अपने को सुख पहुँचाने वाले को नहीं पाता।

भावार्थ - जिसके पास खाने-पीने के लिये पर्याप्त है, फिर भी दीन-दुःखी को देखकर वा केवल मात्र अन्न की कामना करने वाले सच्चे भिक्षुक किसी व्यक्ति या किसी रोग के सताए हुए और घर पर बड़ी आशा लेकर आये हुए अतिथि को देखकर पसीजता नहीं और उसकी भूख-प्यास शान्त नहीं करता, उल्टा अपने दिल को दृढ़कर उसके सामने ही खाता-पीता रहता है, वह भविष्य में अपने को सुख-शान्ति प्रदान करने वाले को नहीं पाता।

व्याख्या - वेद कहता है कि जिसके पास अन्न है, खाने को दाने हैं, पीने को पानी है, पहनने-ओढ़ने को अच्छे-अच्छे कपड़े-लत्ते हैं। तात्पर्य यह है कि उसके पास किसी प्रकार का अभाव नहीं है। किसी तरह की कोई कमी नहीं है। फिर भी हम देखते हैं कि उसके सम्मुख यदि कोई 'आध्र' खड़ा है- यदि कोई निर्धन-निर्बल-कमजोर व्यक्ति खड़ा है, जो सचमुच दया का पात्र है- धारण पोषण करने के योग्य है, फिर भी उसको खाने-पीने को कुछ देता नहीं, पहनने-ओढ़ने को कुछ देता नहीं। जबकि उसका यह कर्त्तव्य है कि जो भी कुछ उससे उस समय बन पड़े, वही कुछ उसे देने का प्रयास करें। ताकि उसका कुछ हित हो सके।

एक बार रेलगाड़ी में एक दम्पती (पति-पत्नी) यात्रा कर रहे थे। स्टेशन आया। गाड़ी खड़ी हुई उन्होंने अपना भोजन निकाला, और दोनों मिलकर खाने लगे। इतने में खिड़की के बाहर किसी भिखारी ने हाथ पसार दिया और बोल-बाबू भूखे को थोड़ी-सी रोटी सब्जी दे दो। इस पर वह व्यक्ति बड़ा ही खीज गया और एकदम बोला कि 'एक तो रोटी खाने बैठो तो ये भिखारी कम्बखत न जाने कहाँ से सिर पर आन खड़े होते हैं और झट हाथ फैला बैठते हैं। हमने बड़ी गलती की जो स्टेशन पर भोजन प्रारम्भ कर दिया। गाड़ी स्टेशन से चल देती, तो

तभी हमें भोजन आरम्भ करना चाहिए था। सामने वाली सीट पर एक सज्जन बैठे हुए थे। उन्हीं को सम्बोधित करके वे कहने लगे। 'देखो भाई साहब! हम इन्हें दें भी तो क्या दें? अब आप ही बताइये, हमारे पास आठ रोटियाँ हैं। चार की भूख तो मेरी है और चार की भूख मेरी पत्नी की। अब हम इन्हें दें भी तो क्या दें?' इस पर वे सज्जन बोले- 'बुरा मानें तो मैं एक बात कहूँ?' वे बोले- भाई साहब! मैं बुरा क्यों मानूँगा, आप जरूर कहिये।

वे सज्जन बोले- 'देखो! आप इसलिये परेशान हो रहे हो कि आपके पास आठ रोटियाँ हैं। चार की भूख आप की है और चार की आदरणीय बहिन जी की। फिर भला आप इसे अब क्या दे सकते हैं? परन्तु मैं तुम्हें बताता हूँ कि यदि आप देना चाहें तो एक ग्रास में से भी दे सकते हैं और न देना चाहें तो आठ के बजाय १६ रोटियों के होने पर भी आप इन्हें कुछ नहीं दे सकते। किसी संस्कृत के कवि ने ऐसे ही व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा है कि-

ग्रासादपि तदर्धं च कस्मान्नो दीयते अर्थिषु।
इच्छानुकूलो हि विभवो कदा कस्य भविष्यति॥

यदि तेरे पास एक ग्रास भी है तो तू उसमें से ही आधा ग्रास भूखे को क्यों नहीं दे देता। क्योंकि यदि तू यह सोचे कि 'मेरे पास इतना होगा तो तभी मैं दूँगा' तो इच्छानुरूप धन-वैभव आज तक भला किसके पास हुआ है। न कभी उतना होगा और न कभी तू देगा।

इस प्रकार कवि ने यहाँ एक ग्रास वाले को भी देना सिखाया है। फिर तुम दोनों के पास तो आठ रोटियाँ हैं। अतः आप न तो इस मंगते को कोसो और न ही स्टेशन पर ही खाना प्रारम्भ करने पर स्वयं को कोसो। जो भी थोड़ा-बहुत हो सके, इसको प्रदान करो। फिर बड़े प्रेम से तुम भोजन करो। ऐसा करने पर फिर तुम्हें भोजन करने में भी बहुत सुख मिलेगा। श्रीकृष्ण जी के शब्दों में फिर तुम भोजन नहीं वरन् अमृत का सेवन कर रहे होगे।

यह सुनकर वह सज्जन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और जब उसने आध्र को उस दीन-दुर्बल को कुछ खाने को दे दिया। उस सज्जन की भी उसने तब बड़ा ही धन्यवाद किया और कहा कि 'भाई साहब! आज आपने हमे जीवन में जीने की एक और नयी कला सिखालायी है। इसके लिये हृदय से हम आपके आभारी हैं।'

सो वेद ने कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिये अपने से जो भी जो कुछ बने उसे दे देना चाहिए। यह नहीं कि वह हाथ फैलाए खड़ा रहे और हाथ पसारे देखता रहे तथा हम हृदय को कठोर बनाये रखें। और निर्लज्ज-बेशर्म होकर व ढीठ बनकर उसके सम्मुख खाते रहें।

(पित्वः चकमानाय) वेद आगे कहता है जो केवल अन्न की कामना करता है, जो सिर्फ भोजन चाहता है, जिसकी जठराग्नि सुलग रही है, अर्थात् जो बुभुक्षित है- जो भूखा है- केवल अन्न ही चाहता है। तो ऐसे व्यक्ति के उदर में प्रज्वलित अग्नि को देखकर तुम उसमें आहुति डालो। यह एक बड़ा भारी यज्ञ है। जैसे यज्ञ में आहुति डालने से सारा वातावरण सुगन्धित होता है। ऐसे इसके उदर में आहुति देने से इसके हृदय से निकलने वाली मंगलकामनायें-इसके हृदय से निकलने वाली दुआएं तुम्हें ऊपर उठायेंगी, आगे बढ़ायेंगी। किसी संस्कृत कवि ने कहा है कि 'गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात्। मनुष्य धन के दान से गौरव को प्राप्त होता है न कि उसके संग्रह से।' इस तरह जिसको आपने भोजन प्रदान किया है। भविष्य में वह न जाने अपने ज्ञान के द्वारा अपने प्रवचनों द्वारा कितने ही व्यक्तियों को राह-रास्ते पर ला सकता है? कितने ही भूले-भटकों का पथ प्रदर्शन कर सकता है, कितने ही जनों के ज्ञाननेत्रों को खोल सकता है। और अगर यह अधिक कुछ भी नहीं कर पायेगा तो स्वयं पढ़-लिखकर सही राह का राहगीर पथिक बन जायेगा। इतने पर भी उस उदर में तेरी अन्न की दी हुई आहुति व्यर्थ नहीं जायेगी। वरन् वह सार्थक हो जायेगी।

(रफिताय) वेद आगे कहता है जो 'रफित' है हिंसित है पीड़ित है व्यथित है किसी व्यक्ति व रोगादि से सताया हुआ है और इस कारण अभावग्रस्त है, तो ऐसे दुःखी प्राणी को अन्नवान होकर भी, अन्न आदि खाद्य

पदार्थों से सुसम्पन्न होकर भी जो नहीं तृप्त करता है, खिला-पिलाकर नहीं सन्तुष्ट करता है तो फिर यह अन्नवान्-धनवान् आदि हुआ भी तो क्या हुआ। ऐसे कष्टापन्न व्यक्ति को देखकर भी जिसका दिल नहीं दुखता, जिसका हृदय नहीं पिघलता, जिसका दिल नहीं द्रवित होता और वह उसकी पीड़ा को नहीं हरता, उसकी भूख-प्यासा आदि कष्ट को नहीं दूर करता, वरन् सब कुछ होते हुए भी जो उसके प्रति अपने मन को कठोर बनाये रखता है और उसके सामने ही अपने धन-वैभव को भोगता रहता है। तो ऐसे व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि आने वाले समय में कभी उस पर दुर्भाग्यवश ऐसी स्थिति आई तो उस पर भी दयालु-कृपालु होकर कोई उसकी मदद नहीं करेगा। वह भी तब अपनी पीड़ा को व्यथा को कष्ट को दु:ख दर्द को स्वयं अकेला ही भोगता रहेगा।

इसी तरह (उपजग्मुषे) जो अपने घर-द्वार पर यह आशा लेकर पहुँचा हो कि 'यहाँ मेरी भूख-प्यास मिट जायेगी, यहाँ मेरी आशा पूर्ण हो जायेगी, अर्थात् यहाँ से मुझे निराश होकर नहीं लौटना पड़ेगा। तो ऐसे घर पर बड़ी उम्मीदों से आये हुए उस अभ्यागत को देखकर भी जो अन्नवान् जो अन्न-धन आदि का स्वामी उसको खिलाने-पिलाने को तैयार नहीं होता, उसकी जठराग्नि में आहुति डालकर उसको तृप्त करने को सन्नद्ध नहीं होता, तो ऐसे व्यक्ति को भी धिक्कार है तथा उसके धन-वैभव को भी। ऐसा व्यक्ति यदि ऐसे अभ्यागत को देखकर भी मन कठोर करके अकेले ही खाता है तो फिर भला ऐसे व्यक्ति पर कभी ऐसी स्थिति आ जाये तो उसको तो फिर कोई मानव तो क्या भगवान् भी नहीं पूछेगा। जब वह किसी को देखकर नहीं पसीजता-नहीं पिघलता, तो फिर भला उस पर कौन पसीजेगा-कौन दया दिखायेगा और उसको सुखी करेगा। उसको तो फिर चाहने पर भी कोई सुख पहुँचाने वाला नहीं मिलेगा, ढूंढने पर भी कोई तृप्त करने वाला नजर नहीं आयेगा।

इसी वेद मन्त्र के आधार पर ही अन्य शास्त्रों में उपर्युक्त चारों को नामान्तर से अन्न आदि खाद्य पदार्थों से तृप्त करने का पात्र बताया है और साथ ही यह भी बताया है कि जो ऐसा करता है 'न तेन पुरुष: सम:' उस जैसा कोई पुरुष नहीं है। श्लोक इस प्रकार है-

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥

अर्थात् जो मनुष्य कृश हैं, कमजोर हैं, उसके लिये विद्वान् अभ्यागत के लिए, जिसकी वृत्ति रोजी-रोटी छिन गई हो, ऐसे दरिद्र के लिये और जो दु:खी हो, व्यथित हो, पीड़ित हो, ऐसे मनुष्य के लिये जो अपनी भूख को मार ले, अर्थात् स्वयं खाये बिना जो ऐसों को खिला दे और खिला-पिलाकर उन्हें तृप्त कर दे, तो उसके समान कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं है।

उपर्युक्त मन्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो उपर्युक्त चतुर्विध व्यक्तियों को देखकर भी अपने मन को कठोर करके, अर्थात् उन्हें दिये बिना उन्हें खिलाये बिना स्वयं खाता है, वह कभी समय आने पर अपने को तृप्त करने वाले अपने को सुखी करने वाले को नहीं पायेगा। अत: जीवन के लम्बे समय को देखते हुए मनुष्य को समय पड़ने पर दूसरों को देते रहना चाहिये- दूसरों की मदद करते रहना चाहिए।

- भूतपूर्व उपकुलपति,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आप आपने लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, ग्रन्थ-समीक्षा व सुझाव हमें ई.मेल - arsh.jyoti@yahoo.in कर सकते हैं।

'जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं, वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं, यह जानना चाहिए।'

वैदिक सोम

❑ डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार...✍

वेदों में सोम का पर्याप्त वर्णन है। ऋग्वेद के नवम मण्डल का पवमान सूक्त तो प्रसिद्ध ही है जिसमें सोम के विभिन्न गुणों का वर्णन किया गया है। वैदिक सोम के कई अर्थ हैं। परमेश्वर, चन्द्रमा, सोमलता आन्तरिक आनन्द आदि इनमें प्रमुख हैं। सोम एक उत्तम शक्तिवर्धक पेय पदार्थ था। ऋ. ५/२/३, ६/३/७ में सोम के साथ अमृत संज्ञा भी प्रयुक्त हुई है। **अपाम सोम अमृता अभूम** ऋ. ८/४८/३ यह वेद का सुप्रसिद्ध वाक्य है। अर्थात् सोमपान से अमृतत्व प्राप्त होता है। शतपथ में इसे स्पष्ट किया गया है कि दीर्घायुष्य ही मनुष्यों का अमृतत्व है, जिसकी प्राप्ति सोमपान से होती है।[१] अमृत का पर्यायवाची पीयूष शब्द भी सोम के लिए प्रयुक्त हुआ है।[२] सोम को मधुपान भी कहा गया है।[३] सोम को रेतोधा भी कहा गया है।[४] इसका अर्थ वीर्यवर्धक अथवा गर्भ रखने वाला हो सकता है। सोमपान से उत्साह तथा शक्तिवर्धन होता है।[५] सोम में रोगनाश की विशेष शक्ति है। रोगियों के लिए यह साक्षात् औषधी ही है।[६] सोम मनुष्यों के शरीरों का पालक होते हुए मनुष्यों के प्रत्येक अंग में है।[७] सोमपान से पापों का क्षय तथा सत्य की वृद्धि होती है तथा मनुष्य की वाणी तेजोमयी हो जाती है।[८] इस हेतु सोम की एक संज्ञा वाचस्पति भी है।[९]

इन्द्र के साथ सोम का सम्बन्ध है। इन्द्र के समान सोम भी अजेय योद्धा है।[१०] यह पीने में श्रेष्ठ नीर तथा अत्यन्त भीतिदायक है।[११] इसका सर्वदा जय ही होता है। सोम को मौजवत: कहा गया है अर्थात् यह मूंजवाले पर्वत पर उत्पन्न होता है। सोम का जल से भी सम्बन्ध है। यह जल प्रवाह के अग्र स्थान पर प्रवाहित होता है।[१२] सोम को निषचाल भी कहा गया है।[१३] यह तीन स्थानों को व्याप्त करता है। इसका अर्थ है कि बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों में व्याप्त होकर सोम उन्हें शुद्ध तथा शक्तिशाली बनाता है।

यह सोम प्राचीन काल से ही आर्यों का प्रिय पेय रहा है। पाश्चात्यों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों ने भी इसके वास्तविक स्वरूप को न समझ कर इसे मद्य का पर्यायवाची मानकर लिख दिया कि आर्य लोग शराब पिया करते थे। टमकपब ।हम आदि पुस्तकों में ऐसे ही विचार प्रकट किये गये हैं। यद्यपि इनका प्रत्याख्यान भी किया जा चुका है। सुरा तथा सोम दोनों पदार्थ पृथक्-पृथक् हैं। अथर्ववेद में मांस भक्षण तथा द्यूत के साथ बुरी आदत के रूप में सुरापान को भी रखा गया है।[१४] वेदों में सुरा को दुर्मद उत्पन्न करके लड़ाई झगड़ा करने वाली कहा गया है।[१५] ऋग्वेद के साथ अक्षसूक्त में पापप्रवृत्ति के कारणों में जुए आदि के साथ सुरा की भी गणना की गयी है।[१६]

सोम तथा सुरा में स्पष्टत: इतनी विपरीतता होते हुए भी पाश्चात्य विद्वानों ने पता नहीं किस कारण से सोम को शराब ही समझकर प्राचीन आर्यों पर मद्यपान का दोष मढ़ दिया। इतना ही नहीं, अपितु सुरा तथा सोम को पृथक्-पृथक् मानने वाले कतिपय भारतीय विद्वान् भी वेदों में सुरापान का प्रतिपादन करते हैं। जैसाकि डॉ. ब्रजबिहारी चौबे लिखते हैं- 'वैदिक काल में आर्यों में सुरापान भी प्रचलित था। सुरा का निर्माण करते वाले सुराकार कहलाते थे। ऋग्वेद १/१९१/१० में जहाँ सुरा तैयार की जाती थी,

उस गृह का उल्लेख किया गया है। सुरा को तैयार कर दृति नामक पात्र में रखा जाता था।'[१७] प्रो. चौबे को यह भ्रान्ति वेद में दृति तथा सुराकार पदों को देखकर हुयी है, जो तथ्यों के सर्वथा विपरीत है। ये दोनों पद ऋ. १/१९१/१० में इस प्रकार प्रयुक्त हैं-

सूर्ये विषमासजामि दृति सुरावतो गृहे।

इस सूक्त का देवता अगस्त्यो मैत्रावरुणि है। **अगः पापं रोगं वा स्त्यायति हिनस्तीति अगस्त्यः।** अर्थात् पाप या पापजन्य रोगों को दूर करने वाला है। चिकित्सक ही अगस्त्य है। इस सूक्त में सूर्य किरणों के द्वारा तथा जन्य प्रकार से रोग निवारण के उपाय कहे गये हैं उपर्युक्त पंक्ति का सीधा सा अर्थ हैं मैं सूर्य में विष को छोड़ता हूँ। स्पष्ट है कि सूर्य किरणों में विषनाशक शक्ति है। अगला पद **दृतिं सुरावतो गृहे** है। प्रश्न है कि यहाँ शराब बनाने वाले व्यक्ति तथा शराब रखने के पात्र का वर्णन कैसे आ गया? रोग निवारण के प्रसङ्ग में यह सर्वथा प्रकरणविरुद्ध है। यहाँ सुरा का अर्थ सोम तो किया जा सकता है क्योंकि सोम में रोगनिवारक शक्ति है। सुरा तो रोगोत्यादिनी है। इसी प्रकार दृति का अर्थ सुरापात्र करने में भी कोई औचित्य नहीं है।

इसी प्रकार प्रो. चौबे ने यजुर्वेद 30/11 के आधार पर कहा है कि सुरा का निर्माण करने वाले सुराकार कहे जाते थे। इस मन्त्र में **'कीलालाय सुराकारम्'** पद पठित है। इसके आधार पर श्री प्रो. चौबे ने उक्त धारणा बनाली किन्तु कीलाल का अर्थ करने में वे भूल कर गये। आप लिखते हैं-पेय के रूप में कीलाल (अथर्व. ४/११/१०) और परिस्रुत का भी उल्लेख मिलता है।[१८] कीलाल पेय पदार्थ है ही नहीं कीलाल अन्नवाचक है।[१९] अथर्ववेद का उक्त मन्त्र इस प्रकार है।

श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः अथर्व. ४/११/१० इसका सीधा सा अर्थ है कि परिश्रम के द्वारा किसान तथा बैल अन्न को प्राप्त करते हैं अर्थात् अन्न उपजाते हैं। यजु. ३०/११ के 'कीलालाय सुराकारम्' का अर्थ स्वामी दयानन्द ने निघण्टु के आधार पर अन्नाय सोम निष्पादकम् किया है।

इस प्रकार कीलाल को पेय पदार्थ बतलाना तथा सुराकार आदि शब्द देखकर प्राचीन आर्यों पर सुरापान का दोष लगाना युक्ति युक्त नहीं है।

सन्दर्भसूची :-

१. एतद्वे मानुषाणाममृतत्वं यद् दीर्घायुष्यं नाम। शत.
२. ऋग्वेद ३/४८/२
३. ऋग्वेद ९/९७/१४
४. ऋग्वेद ९/८६/३०७
५. ऋग्वेद ९/१०६/८
६. ऋग्वेद ८/६८/२
७. ऋग्वेद ६/४७/३
८. ऋग्वेद ९/७/३, ९/६२/२५-२६
९. ऋग्वेद 9/59/9
१०. ऋग्वेद १/९१/२१
११. ऋग्वेद ९/६६/१६-१७
१२. ऋग्वेद ९/८६/१२
१३. ऋग्वेद ८/८३/५
१४. यथा मांसं यथा सुरायथाक्षा अधिदेवने। अथर्व. ६/७०/१
१५. हृत्सुपीवासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुषयाम्। ऋग्वेद ८/२/१२
१६. वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ. ५८०
१७. न स स्व दक्षो वरुण द्युतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको। ऋ. ७/८६/७
१८. बद्री पृ. ५२१
१९. कीलाल इत्यन्ननाम् (निघ. २/७)

- पूर्व प्रोफेसर,
रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

महाभाष्य का ज्योतिष विषयक एक प्रसङ्ग

❑ आचार्य उदयन 'मीमांसक'...✍

महर्षि पाणिनि विरचित अष्टाध्यायी सम्पूर्ण संसार के लिए एक अपूर्व एवं अमूल्य ज्ञाननिधि है। मानव मस्तिष्क के द्वारा आविष्कृत विद्याओं में अग्रगण्य है। ऐसी अष्टाध्यायी के ऊपर महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखा, जो कि व्याकरणशास्त्र के लिए विशाल आकर ग्रन्थ है। इसके अध्ययन से गूढ़तम विषयों को समझने व समझाने का सामर्थ्य एवं किसी भी विषय पर तर्कपूर्ण तथा युक्तिबद्ध विवेचन करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और यह ग्रन्थरत्न बुद्धि को सूक्ष्मतम बनाने का अनुपम साधन भी है। इसमें व्याकरणशास्त्र का सूक्ष्मतम विवेचन तो किया ही गया है, वह उसका प्रधान विषय भी है, पर उसके साथ में दर्शनशास्त्र के तत्त्व, व्याकरणेतर शिक्षादि वेदाङ्गों एवं उपवेदों की महत्त्वपूर्ण सामग्री की भी कोई कमी नहीं है। यहां केवल वेदाङ्ग ज्योतिष से सम्बद्ध एक प्रसंग सविवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

अष्टाध्यायी के समासप्रकरण में एक सूत्र है— **''अत्यन्तसंयोगे च''** (२.१.२८)। इसका अर्थ यह है कि- 'अत्यन्तसंयोग अर्थात् सम्पूर्णसंयोग अर्थ का बोध हो रहा हो तो कालवाची द्वितीया-विभक्त्यन्त शब्द का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से तत्पुरुषसमास होता है'। जैसे कि- **'मुहूर्त्तसुखम्',** यहाँ मुहूर्त्त और सुख दो शब्द मिलकर एक शब्द के रूप में परिवर्तित हुए हैं, इसे ही समास कहा जाता है। समास होने पर इन दो शब्दों के अर्थ से अतिरिक्त एक नया अर्थ भी निकलता है, यही समास का प्रयोजन है। वह नया अर्थ यह है कि- 'मुहूर्त्तभर सुख' अर्थात् सम्पूर्ण मुहूर्त्त (४८ मिनट) में सुख व्याप्त रहा है, उसमें एक भी क्षण सुख रहित नहीं है। इसप्रकार का प्रयुक्त शब्दों से अतिरिक्त नया अर्थ प्रकट होना, यह समास का ही माहात्म्य है। इसी नये अर्थ में पाणिनि ने समास का विधान किया है। इसीप्रकार **'सर्वरात्रशोभना'** (सम्पूर्ण रात अच्छी है) आदि शब्दों में समझना चाहिए। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महाभाष्यकार लिखते हैं कि प्रकृतसूत्र (२.१.२८) से पूर्व **'कालाः** (क्तेन)**'** (२.१.२७) सूत्र अनावश्यक है, क्योंकि उससे सिद्ध होने वाले **''अहरतिसृता मुहूर्त्ताः, रात्र्यतिसृता मुहूर्त्ताः''** आदि शब्द **'अत्यन्तसंयोगे च'** इस प्रकृतसूत्र से ही सिद्ध हो जायेंगे। इसका समाधान देते हुए लिखते हैं कि— यह आशंका उचित नहीं है, क्योंकि प्रकृत सूत्र अत्यन्तसंयोग अर्थ में ही समास करता है, जहाँ अत्यन्तसंयोग अर्थ विद्यमान न हो, वहाँ भी समास सिद्ध हो, उसके लिए पूर्वसूत्र 'कालाः' अत्यन्त आवश्यक है। जैसे कि— **'अहर्गताः'** (दिन में लीन मुहूर्त्त), **'रात्रिगताः'** (रात में लीन मुहूर्त्त) उदाहरणों में देखा जाता है। क्योंकि छह मुहूर्त्त गतिशील हैं, वे कभी (उत्तरायण के) दिन में होते हैं और कभी (दक्षिणायन की) रात में होते हैं- **''षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः। ते कदाचिद् अहर्गच्छन्ति, कदाचिद् रात्रिम्''** (म०भा० २.१.२८)। अर्थात् इन छह मुहूर्त्तों का दिन-रात के साथ सदा अत्यन्तसंयोग नहीं रहता। वहां भी समास सिद्ध हो, इसके लिए **'कालाः'** सूत्र सप्रयोजन बनाया गया है। पर कौन से छह मुहूर्त्त गमनागमनशील हैं? वे कौन से दिन में व कौनसी रात में आते-जाते हैं? ऐसा क्यों होता है? कैसा होता है? इसका स्पष्टीकरण यहां नहीं मिलता। जब तक इन विषयों को समझा नहीं जायेगा, तब तक महाभाष्य के समाधान एवं उदाहरणों को पूर्णतया समझपाना असम्भव है। इसका पूरी प्रक्रिया के साथ स्पष्टीकरण हमें ज्योतिष के ग्रन्थों में मिलता है, इसे यहाँ जिज्ञासुओं के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है—

हम सब दिन-रात को घटते-बढ़ते हुए प्रत्यक्षतः देखते हैं कि सायन मकर संक्रान्ति (२२ दिसम्बर) को सबसे छोटा दिन होता है[१] और रात सबसे बड़ी होती है, उसके (=उत्तरायणारम्भ के) पश्चात् दिन-प्रतिदिन क्रमशः दिन का मान बढ़ता जाता है एवं रात छोटी होती जाती है। इसप्रकार छह मास के उपरान्त सायन कर्क संक्रान्ति (२१ जून) को सबसे

बड़ा दिन होता है और रात सबसे छोटी होती है। दिनवृद्धि का संकेत हमें ऋग्वेद में भी मिलता है- **''सोम राजन् प्र ण आयूँषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि''**(ऋ० ८.४८.७) हे सोम राजन् ! परमात्मन् ! (नः आयूंषि प्रतारीः) हमारी आयु को वैसे ही बढ़ाईये (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जैसे सूर्य वसानेवाले व जगत् को आच्छादित करने वाले दिनों को बढ़ाता है। दिन-रात के वृद्धि-ह्रासों का स्पष्ट उल्लेख वेदांगज्योतिष (याजुष एवं आर्च ज्योतिष) में मिलता है-

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु ॥

- याजुष० ८, आर्च० ७

सूर्य उत्तरायण में प्रवेश करने पर दिन का मान प्रस्थभर का काल[२] बढ़ता और उतना ही काल (एक प्रस्थ) रात का मान घट जाता है। और सूर्य के दक्षिणायन में प्रवेश करने पर विपरीत अर्थात् दिन का ह्रास तथा रात की वृद्धि होती है। इसप्रकार दिन-रातों का यह वृद्धिकाल अयन के अन्त तक अर्थात् छह मास में छह मुहूर्त्त का हो जाता है। यहां प्रस्थ से मुहूर्त्त तक के कालखण्डों को जानना होगा। वह इस प्रकार है-

खार्येका षोडशभिर्द्रोणैश्चतुराढको भवेद् द्रोणः ।
प्रस्थैश्चतुर्भिराढक एकः प्रस्थश्चतुः कुडवः ॥

- पाटीगणितसारः-६

१६ द्रोण की १ खारी, ४ आढक का १ द्रोण, ४ प्रस्थ का १ आढ़क और ४ कुडव का १ प्रस्थ होता है। इसे ही भास्कराचार्य ने अन्यप्रकार से व्यक्त किया है-

द्रोणस्तु खार्याः खलु षोडशांशः स्यादाढको द्रोणचतुर्थभागः।
प्रस्थश्चतुर्थांश इहाढकस्य प्रस्थाङ्घ्रिराद्यैः कुडवः प्रदिष्टः ॥

- लीलावती-८

$\frac{१}{१६}$ खारी = १द्रोण, $\frac{१}{४}$द्रोण = १ आढ़क, $\frac{१}{४}$आढ़क = १ प्रस्थ, $\frac{१}{४}$प्रस्थ = १ कुडव।

पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकम् (याजुष वेदाङ्गज्योतिष-२४)

इसके अनुसार ५० पल का १ आढ़क होता है।[३]

उक्त परिमाणों की परस्पर तुलना का निष्कर्ष इसप्रकार है-

१ आढ़क = $\frac{१}{४}$द्रोण ⇒ ४ आढ़क = १ द्रोण = २०० पल = १६ प्रस्थ = ६४ कुडव।

$\frac{१}{४}$आढ़क = १ प्रस्थ ⇒ ४ प्रस्थ = १ आढक = ५० पल = १६ कुडव।

१ प्रस्थ = $\frac{५०\text{पल}}{४}$ = १२$\frac{१}{२}$ पल = ४ कुडव = $\frac{४}{६०}$ घड़ी[४]

$\frac{१}{४}$प्रस्थ = १ कुडव ⇒ ४ कुडव = १ प्रस्थ = १२$\frac{१}{२}$ पल।

१ कुडव = $\frac{१\text{प्रस्थ}}{४}$ = १२$\frac{१}{२}$ ÷ ४ = ३$\frac{१}{८}$ पल

३ कुडव = ३×३$\frac{१}{८}$ पल = ९$\frac{३}{८}$ पल

.....द्रोणमतः प्रमेयम् ।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम् ॥

- याजुषवेदाङ्गज्योतिष -२४

अर्थात् १ नाडिका = १ द्रोण- ३ कुडव (६४ कुडव - ३ कुडव)
= २०० पल - ९$\frac{३}{८}$ पल (६१ कुडव)

१ नाडिका (घटी, घटिका) = १९०$\frac{५}{८}$ पल = ६१ कुडव

१ प्रस्थ में १२$\frac{१}{२}$ पल होते हैं, इसे पहले ही कह चुके हैं, इन्हें नाडिका के पलों में भाग देने से नाडिका के प्रस्थ ज्ञात होंगे-

१ नाडिका = १९०$\frac{५}{८}$ पल ÷ १२$\frac{१}{२}$ पल = $\frac{६१}{५}$ प्रस्थ

एक मुहूर्त में दो नाडिकाएँ (घटिकाएँ) होती हैं, अतः १ मुहूर्त्त=२ नाडिका=२×$\frac{६१}{५}$ = $\frac{६१}{२}$ प्रस्थ हैं। स्पष्ट है कि एक मुहूर्त्त में $\frac{६१}{२}$ प्रस्थ होते हैं। उत्तरायण के आरम्भ दिन से प्रत्येक दिन एक प्रस्थ (=१२$\frac{१}{२}$ पल) भर दिन की वृद्धि होती है। एक सौर मास में ३०.५ दिन होते हैं।[५] अर्थात् एक मास में ३०.५ प्रस्थ परिमित दिन की वृद्धि होगी। एक अयन में अर्थात् छह मासों में ३०.५×६= १८३ प्रस्थ परिमित दिन की वृद्धि होगी। एक मुहूर्त्त में $\frac{६१}{२}$ प्रस्थ होते हैं, यह सिद्ध हो चुका है। इसलिए १८३ प्रस्थों को $\frac{६१}{२}$ प्रस्थों से भाग देने पर छह मासों में होने वाली दिन की वृद्धि मुहूर्त्तों में प्राप्त होगी—

१८३ प्रस्थ ÷ $\frac{६१}{२}$ = ६ मुहूर्त्त (=१२ नाडिका)[६]। अर्थात् एक अयन में ६ मुहूर्त्त परिमित दिन की वृद्धि होती है और ६ मुहूर्त्त परिमित ही रात का ह्रास होता है। वैसे ही दक्षिणायन के आरम्भ से प्रत्येक दिन १ प्रस्थ (१२$\frac{१}{२}$ पल) परिमित रात की वृद्धि होती हुई दक्षिणायन के अन्त तक ६ मुहूर्त्त परिमित रात की वृद्धि

होती है एवं दिन का ह्रास होता है ।

एक दिन (२४ घण्टे) में ३० मुहूर्त्त होते हैं अर्थात् दिन के १५ एवं रात के १५ मुहूर्त्त होते हैं । यह एक सामान्य कथन है, क्योंकि दिन-रात के ये १५-१५ मुहूर्त्त वर्षभर के सभी दिनों में नहीं रहते । कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित है कि- **''द्विनाडिको मुहूर्त्तः । पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्वयुजे च मासि भवतः । ततः परं त्रिभिर्मुहूर्त्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते ह्रसते च''** (कौ.अ. २.३६.-२०.८)। चैत्र एवं आश्विन मासों (के आरम्भ) में रात-दिन समान होते हैं अर्थात् १५-१५ मुहूर्त्तों के होते हैं । दक्षिणायन के अन्त में सायन मकर संक्रान्ति (२३ दिसम्बर) का दिन सबसे छोटा होता है, उसके पश्चात् (उत्तरायण के आरम्भ से) प्रस्थ परिमाण के काल की वृद्धि होती हुई चैत्रारम्भ तक तीन माह में रात-दिन समान होते हैं, उसके पश्चात् तीन माह और वृद्धि होती हुई उत्तरायण के अन्त (२१ जून) तक सबसे बड़ा दिन होता है । अर्थात् दिन-रातों का १५-१५ मुहूर्त्तों का समान परिमाण वर्ष में दो ही दिन रहता है । इसप्रकार उत्तरायण के अन्तिम दिन में १२ मुहूर्त्त+३ मुहूर्त्त+(दक्षिणायन की रात सम्बन्धी) ३ मुहूर्त्त = १८ मुहूर्त्त होते हैं, तो रात में (१५-३=) १२ मुहूर्त्त होते हैं । इसी प्रकार दक्षिणायन की अन्तिम रात में (१२मु.+३ मु.+(उत्तरायण के दिन सम्बन्धी) ३ मुहूर्त्त = १८ मुहूर्त्त होते हैं, तो दिन में (१५-३=) १२ मुहूर्त्त होते हैं । यहाँ यह ध्यातव्य विषय है कि दिन-रातों के १२-१२ मुहूर्त्त तो वर्ष भर में निश्चित रहते हैं अर्थात् इनका वर्षभर के प्रत्येक दिन के साथ अत्यन्तसंयोग है । शेष ३-३ (छह) मुहूर्त्त तो क्रमशः घटते-बढ़ते हुए कभी दिन में रहते हैं और कभी रात में । इसी का उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने लिखा है कि-**''षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः, ते कदाचिद् अहर्गच्छन्ति, कदाचिद् रात्रिं गच्छन्ति''** (म.भा. २.१.२८) ।

इसे आधुनिक कालगणना के अनुसार दर्शाते हैं- एक मुहूर्त्त में ४८ मिनट होते हैं । ६ मुहूर्त्तों में (६×४८ मि.=) २८८ मिनट होते हैं अर्थात् (२८८÷६०=)४.८ घण्टे (=४ घण्टे ४८ मिनट) होते हैं । दिन-रात के ठीक १२-१२ घण्टे समानरूप से वर्ष में दो ही दिन रहते हैं । उत्तरायण के अन्तिम दिन का मान ९घं. ३६मि. + २घं. २४मि. + २घं. २४मि.= १४ घण्टे २४ मिनट होता है और रात का मान (१२घं.-२घं. २४मि.=) ९ घण्टे ३६ मिनट होता है । इसीप्रकार दक्षिणायन की अन्तिम रात का मान १४ घण्टे २४ मिनट एवं दिन का मान ९घं. ३६मि. का होता है । अर्थात् वर्षभर प्रतिदिन का नियत (=अत्यन्तसंयुक्त) काल का मान ९घं. ३६मि. है, पर ४घं. ४८मि. काल चराचर है। यह कालखण्ड कभी उत्तरायण के दिन में होता है, कभी दक्षिणायन की रात में । यही महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि का आशय है। यहां यह भी विशेषतया ध्यान देने योग्य विषय है कि- यह वृद्धि और ह्रास का कथन पृथिवी के उत्तर-दक्षिण गोलार्धों के लिए ही है। क्योंकि विषुववृत्तस्थ (भूमध्यरेखास्थ) देशों में सदा समान दिन-रात होते हैं और वसन्तविषुव एवं शरदविषुव के समय अर्थात् अयनान्त व अयनारम्भ के दिनों में उत्तर-दक्षिण के गोलार्धों में भी समान दिन-रात होते हैं। उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुवों पर तो छह मास दिन और छह मास रात होती है।

सन्दर्भसूची :-

१. संक्रान्ति पर्व २२ दिसम्बर को ही मनाना ज्योतिषशास्त्र और खगोलविज्ञान से सम्मत है, न कि १४-जनवरी ।

२. घटीपात्र या घटीयन्त्र नामक पात्रविशेष, जिसके नियत छिद्र के द्वारा प्रस्थभर जल टपकने में जितना समय लगता है, उस समय को भी 'प्रस्थ' कहा जाता है।

३. इन परिमाणों का उल्लेख बहुत्र मिलता है । यथा- चरक० कल्प० १२.८७-९६, सुश्रुत० चिकित्सा० ३१.७, शार्ङ्गधरसंहिता, १.१.३२-३३, मनु० ८.१३२-१३६, याज्ञवल्क्यस्मृति - १.३६२-३६३ आदि ।

४. घड़ी का उल्लेख आगे आयेगा, इसके दूसरे नाम हैं- घटी, घटिका, नाडिका ।

५. एक सौरवर्ष में ३६६ दिन स्वीकृत हैं, तो एक मास में (३६६÷१२=) ३०.५ दिन होगें।

६. $१८३ \div \frac{६१}{२} = १८३ \times \frac{२}{६१} = \frac{३६६}{६१} = ६$ मुहूर्त्त ।

१ घटिका= $\frac{६१}{४}$ प्रस्थ = $१५\frac{१}{४}$ प्रस्थ

१ मुहूर्त = २ घटिका = $\frac{६१}{२}$ प्रस्थ = $३०\frac{१}{२}$ प्रस्थ = ४८ मिनट

१ प्रस्थ = १. ५७३ मिनट

१ मास में दिन की वृद्धि ...३०.५ प्रस्थ = १.५७३ मि.× ३०.५ दिन
= ४७.९७६५ मिनट (= ४८ मिनट = एक मुहूर्त)

६ मास में दिन की वृद्धि ....= ४७.९७६५×६= २८७.८५९ मिनट
= २८८ मिनट (लगभग) (= ४ घण्टे ४८ मिनट = ६ मुहूर्त)

- गुरुकुल निगमनीड़म् (वेदागुरुकुलम्),
पिडिचेड, गंजवेल, सिद्धिपेट
(तेलंगाना)-५०२२७८

आर्यदेश भक्तों की उपेक्षा

❑ राजेशार्य...✍

प्रिय पाठकवृन्द!

यद्यपि लाला लाजपत राय व भाई परमानन्द की गिरफ्तारी के समय आर्य समाज के एक प्रतिनिधि वर्ग ने कुछ कमजोरी (भगतसिंह ने इसे बुद्धिमत्त माना है) दिखाई और ब्रिटिश सरकार को यह लिखकर दिया था कि आर्य समाज धार्मिक आन्दोलन है, इसका राजनीतिक आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि भगतसिंह ने अपनी जेल नोटबुक में लिखा है कि अब यदि एक कार्य के रूप में समाज विच्छेद के इस दावे को मान भी लिया जाए तब भी कट्टर हिन्दुओं के लिए यह बात गौर तलब होनी ही चाहिए कि भले आर्यसमाज में पंजाब की हिन्दू आबादी के ५ प्रतिशत से अधिक लोग शामिल नहीं हैं, फिर भी १९०७ से लेकर आज १९३१ तक हिन्दुओं की एक बड़ी आबादी राजद्रोह और दूसरे राजनीतिक अभियोगों के तहत दण्डित होती रही, वह इस आर्यसमाज का ही सदस्य रही हैं।

पर जब देश का स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास लिखा गया, तो उसमें से आर्य समाज का योगदान गायब हो गया। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी के लेख से यह संकेत मिलता है कि भारत सरकार ने यह इतिहास तैयार करने के लिए डॉ. सैयद महमूद की अध्यक्षता में जो समिति बनाई थी, उसके बहुत से सदस्य ऐसे थे जिनका अंग्रेजी जमाने से कोई सम्बन्ध नहीं था। पंजाब की प्रान्तीय समिति में पं. जयचन्द विद्यालंकार को लिया गया, तो स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने लिखा - १९३० के बाद क्रान्ति आन्दोलन तथा ऋषि दयानन्द के अनुयायियों और आर्यसमाजियों के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रयत्नों के इतिहस की सामग्री जुटाने का कार्य पं. जयचन्द जी को सौंपा गया है। पं. जयचन्द विद्यालंकार भारत में इतिहास के माने हुए विद्वानों में से एक धार्मिक विद्वानों में से एक है। धार्मिक सिद्धान्तों में आर्य समाज से उनका मतभेद भी हो सकता है तो भी राजनीति में वे ऋषि दयानन्द के अनुयायी हैं।

मैं प्रदेशीय समाजों और प्रत्येक आर्यसमाज से निवेदन करता हूँ कि वे इस कार्य में पं. जयचन्द की सहायता करें।

इसके उपरान्त भी आर्यवीरों के बलिदान की चर्चा इतिहास में नहीं मिलती है। मेरे विचार से इसके ये कारण हो सकते है - आर्य समाजियों का बिखरना, कांग्रेस द्वारा सत्ता हथियाना और शिक्षा संस्थानों पर कम्यूनिस्टों का कब्जा। स्व. डॉ. धर्मवीर जी ने लिखा है - 'स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्यसमाज का राजनैतिक मंच न होने के कारण आर्य सभासद अधिकतर तो कांग्रेस पार्टी से जुड़े थे, अतः उससे जुड़ गये। कुछ साम्यवादी और कुछ जनसंघ से जुड़ गये। इन सब राजनीतिक लोगों ने अपने संगठन में आर्य समाज का कार्य नहीं किया, परन्तु आर्य समाज को उन संगठनों से जोड़ने का प्रयास किया। इस प्रकार समाज का कार्य पीछे छूट गया।' (परोपकारी, फरवरी-१६)

जो आर्यसमाजी कांग्रेस के पीछे लगे वे सत्ताधारी कांग्रेस पर आर्य समाज का प्रभाव नहीं जमा पाये। परिणामस्वरूप इतिहास में आर्यसमाज की उपेक्षा हो गई। वैसे भी नेहरूसरकार ने तो कांग्रेस के अध्यक्ष रहे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का बलिदानी जीवन व इतिहास दोनों ही अन्धेरे में दबा दिये थे। सरदार पटेल में यद्यपि योग्यता थी तथापि वे गाँधी जी के आशीर्वाद से ही भारत (स्वतन्त्र) की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा पाये थे, अन्यथा नेहरूजी तो उनकी हर नीति का विरोध करते थे। नेहरू जी ने अपने अधिकारियों और मंत्रियों को निर्देश दिया था कि वे पटेल जी के अंतिम संस्कार में शामिल न हों। (दै.जा.१९.२.२०) पटेल जी

की मृत्यु के बाद तो उनके सहयोगियों को नेहरू जी ने चुन-चुनकर शासन और संगठन के कार्यों से सर्वथा अलग कर दिया था। फिर ऐसी सरकार से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह आर्य बलिदानियों के बलिदान को इतिहास में स्थान देती।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस के कार्यों को महिमामंडित करने के लिए सरकारी स्तर पर एक इतिहास लेखन की योजना बनी। यह कार्य भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आर. सी. (रमेशचन्द्र) मजूमदार को दिया गया जो सर्वथा उचित था। इतिहास लेखन की प्रक्रिया के बीच में पं. नेहरू को जानकारी मिली कि इसमें सुभाषचन्द्र बोस को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है, तो डॉ. मजूमदार से यह योजना छीन ली गई तथा यह कार्य डॉ. ताराचन्द को दिया गया जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे थे तथा वहाँ के छात्र उन्हें मियां ताराचन्द भी कहते थे। यह था नेहरू सरकार का असली चेहरा। (यह अलग बात है कि डॉ. मजूमदार की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट' डॉ. ताराचन्द की पुस्तक से पूर्व ही तीन खण्डों में प्रकाशित हो गयी।) फिर नेहरू जी ने डॉ. ताराचन्द जी को राजदूत बना दिया। बाद में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी प्रो. नूरुल हसन को शिक्षा मंत्री बनाकर सारे तन्त्र का वामपन्थीकरण कर डाला। सभी शिक्षण संस्थाएं कम्युनिस्टों के कब्जे में आ गई। फिर आर्यसमाज के बलिदानियों का इतिहास कैसे लिखा जाता? क्योंकि कम्युनिस्टों ने तो भगतसिंह के वरिष्ठ क्रान्तिकारी साथी पं. रामप्रसाद बिस्मिल का ही इतिहास नहीं लिखा, अपितु अंतिम समय तक भगतसिंह का साथ देने वाले बटुकेश्वर दत्त (बी.के.दत्त) का भी नहीं लिखा। क्योंकि उन्होंने मार्क्सवाद को त्याग दिया था। और भगतसिंह का प्रचार इसलिए किया कि वे नास्तिक व लेनिनवाद से कुछ प्रभावित थे। यदि भगतसिंह जीवित रहते और बी.के.दत्त की तरह वे भी क्रान्तिकारी परिदृश्य से गायब कर देते।

पाञ्चजन्य के 'शहीद भगतसिंह' विशेषांक (२००७ ई.) में श्री देवेन्द्र स्वरूप ने लिखा है - 'आजकल सभी कम्युनिस्ट गुट अपने-अपने हिसाब से भगतसिंह के दस्तावेजों के संकलन प्रकाशित कर रहे हैं। जो दस्तावेज उन्हें अपने अनुकूल नहीं लगते, उन्हें दबा दिया जाता है। दस्तावेजों की लुका-छिपी का एक ही उदाहरण यहाँ देना पर्याप्त होगा। दो मार्क्सवादियों - जगमोहन सिंह और चमनलान ने भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज का पहला संस्करण १९८७ में प्रकाशित किया, उसमें भगतसिंह के साथी बटुकेश्वर दत्त द्वारा १९६० में लिखित 'क्रान्तिकारी जीवन दर्शन' शीर्षक लेख भी सम्मिलित किया, किन्तु १९९१ में प्रकाशित दूसरे संस्करण में इसको निकाल दिया गया क्यों? क्योंकि वह लेख उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और प्रेरणा को प्रस्तुत करता है।'

प्रिय पाठकवृन्द! यदि भगतसिंह जीवित हो, तो क्या अपने साथी का यह अपमान सहन कर पाते? यह सत्य है कि काले पानी की यातना झेलने के बाद (१९३८ ई.) बटुकेश्वर दत्त मार्क्सवाद को त्याग कर आदर्श योगी को क्रान्तिकारी के समकक्ष मानने लगे थे - 'दोनों मृत्यु से नहीं डरते'। कालांतर में वे स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन से भी प्रभावित हो गये थे। पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि केवल वहीं क्रान्तिकारी सम्मानित हो जो मार्क्सवादी लेनिनवादी और नास्तिक हो। दुर्गा भाभी 'भगतसिंह जो मेरे बहुत निकट थे' लेख में लिखा है - 'सच तो यह है कि क्रान्तिकारी समय-समय पर आवश्यकतानुसार दुनिया में पैदा होते हैं और अपने देश व समाज को जो भी उनकी देन (आहुति) होती है, देकर चले जातें है यही उनकी सफलता है। इस संगठन का कोई केन्द्रिय मठ नहीं बना रह पाता और जो व्यक्ति किसी कारण रह जाते है, वे फिर क्रान्तिकारी नहीं रह जाते। क्रान्ति क्षणभंगुर है, स्थायी वस्तु नहीं'।

अब एक नजर बटुकेश्वरदत्त के अपेक्षित जीवन पर डालते है। केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंककर

भगतसिंह के साथ कदम से कदम मिलाकर अडिग होकर चले। राजनैतिक कैदियों को सुविधा दिलाने के लिए भगतसिंह ने जो भूख हडताल की थी। उसमें बटुकेश्वर दत्त पूरे समय साथ चले। क्रान्तिवीर शिववर्मा के अनुसार - यह भूख हडताल ६३ दिन चली। भगतसिंह और दत्त ने तीन महीने से ऊपर पार किये।' 'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय ने पने सम्पादकीय में 'इन्कलाब जिन्दाबाद' को अराजकता और खून-खराबे का प्रतीक कहा तो २३ दिसम्बर १९२९ को भी नेताजीसुभाष चन्द्रबोस के सभापतित्व में होने वाले 'पंजाब छात्र यूनियन' के दूसरे अधिवेशन के नाम भगत-दत्त ने अपनी तरफ से सन्देश भेजा था।

बाद में दत्ते को अलग कर दिया गया। जब वे सैलभ (मद्रास) जेल में आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे थे, तो भगतसिंह राजगुरु व सुखदेव को फाँसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को यह दिखा दूँगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान दे सकते हैं। ....किन्तु तुम्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला है...तुम्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखाना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए हर मुसीबत का मुकाबला भी कर सकते हैं।

भगतसिंह आदि तो मुक्ति पथ के पथिक बन गये, पर दत्त को मद्रास से अडमान (कालापानी) भेज दिया गया। वहां से १९३७ में उन्हें पटना लाया गया और १९३८ में बंगाल, पंजाब तथा उत्तरप्रदेश में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाकर रिहा कर दिया गया। भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने पर पुनः बन्दी बना लिया गया और चार वर्ष बाद १९४५ ई. को हजारी बाग जेल (बिहार) से रिहा किया।

आजादी के बाद दत्त जी नवम्बर १९४७ में अंजली देवी के साथ गृहस्थी (३७ वर्षीय) बन गये। पर आर्थिक तंगी से बहुत परेशान रहे। पटना में रहते हुए गुजारे के लिए दत्त जी को सिगरेट कम्पनीका एजेंट बनना पडा, टूरिस्ट गाइड की नौकरी करनी पडी। श्रीमती अंजलीदत्त को एक निजी स्कूल में पढाना पडा। बिस्कुट - डबल रोटी का एक छोटा सा कार खाना लगाया। भारी नुकसान उठाकर उसे भी बन्द करना पड़ा। (इनकी पुत्री भारती बागची पटना में रह रही हैं।)

साठ के दशक में पटना में बसों के परमिट दिये जाने थे। दत्त ने भी आवेदन कर दिया। जब वे (पंक्ति में खडे हुए) पटना के कमिश्नर से मिले और अपना नाम बताकर कहा कि वह एक स्वतंत्रता सेनानी है तो कमिश्नर ने कहा - मैं कैसे मान लूँ, आपके पास तो स्वतंत्रता सेनानी वाला सेर्टिफिकेट भी नहीं है। पहले लाइये, तब मानूंगा।' यह सुनकर दत्त जी को बहुत अफसोस हुआ कि भगतसिंह आदि के साथ उसे भी क्यों नहीं हुई कम से कम देश याद तो करता। जिस स्वतन्त्रता के लिए १५ वर्ष जेल में बिताकर शारीरिक यातना के साथ बीमारी भी मोल ली, उस स्वतंत्रता में उन्हें स्वतंत्रता सेनानी भी नहीं माना जाता।

बस परमिट वाली बात पता चलने पर बाद में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने माफी मांगी। सम्भवतः उसी के परिणाम स्वरूप १९६३ ई. में बिहार विधान परिषद ने दत्त को अपना सदस्य बनाया। १९६४ में दत्त जी बीमार पड़े। पटना के सरकारी अस्पताल में उन्हें कोई पूछने वाला नहीं था। इस पर उनके मित्र चमनलाल आजाद ने लिखा - 'क्या दत्त जैसे क्रांतिकारी को भारत में जन्म लेना चाहिए, परमात्मा ने इतने महान शूरवीर को हमारे देश में जन्म देकर भारी भूल की है। खेद की बात है कि जिस व्यक्ति ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी और जो फाँसी से बाल -बाल बच गया, वह आज नितांत दयनीय स्थिति में अस्पताल में पडा एडियाँ, रगड़ रहा है और उसे कोई पूछने वाला नहीं है।'

आजाद के. गृहमंत्री गुलजारी लालनन्दा और पंजाब के मंत्री भीम लाल सच्चर से मिले। इससे सत्ता के गलियारों में हड़कंप मच गया। पंजाब सरकार ने बिहार के मुख्यमंत्री के.बी. सहाय को लिखा कि यदि पटना में बटुकेश्वरदत्त का इलाज नहीं हो सकता तो उन्हें दिल्ली या चण्डीगढ भेज दिया जाए, हम यह

खर्च उठाने को तैयार हैं। इस पर बिहार सरकार हरकत में आई, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। २२ नवम्बर को दत्त जी को दिल्ली लाया गया। भगतसिंह की माता विद्यावती इन्हें अपना धर्मपुत्र मानती थी। बाद में माता जी को अस्पताल में बुला लिया गया। पंजाब के मुख्यमन्त्री रामकिशन ने जब दत्त जी को कुछ देना चाहा, तो दत्त जी ने कहा - हमें कुछ नहीं चाहिए। बस मेरी इच्छा है कि मेरा दाह संस्कार मेरे मित्र भगतसिंह की समाधि के बगल में किया जाए। २० जुलाई १९६५ को देश के महान गौरव ने अन्तिम विदाई ली । अंतिम संस्कार के समय माता विद्यावती हुसैनीवाला में साथ थी। १९६८ में भगतसिंह आदि के समाधि तीर्थ के उद्घाटन पर ८६ वर्षीया माता ने पहले दत्त की समाधि पर फूलों का हार चढाया।

चन्द्रशेखर आजाद से पहले भगतसिंह आदि के दल का नेतृत्व करते थे अमर बलिदानी पं. रामप्रसाद बिस्मिल। चन्द्रशेखर आजाद बिस्मिल के आस्तिक, देशभक्तिपूर्ण व आर्यसमाजी विचारों से बहुत प्रभावित थे। काकोरी काण्ड में गिरफ्तार होने पर जेल में बन्द बिस्मिल को स्वार्थी संसार की असलीयत का कटु अनुभव हुआ, जो उन्होंने फाँसी आने (१९ दिसम्बर १९२७) से कुछ दिन पहले लिखी आत्मकथा में वर्णन किया है। सहानुभूति रखने वाले किसी बार्डर के हाथों यह पुस्तक गुप्त रूप से बाहर (संभवत: गणेश शंकर विद्यार्थी के पास) भेजी गई। पं. शंकर विद्यार्थी के प्रताप प्रेस से प्रकाशित हुई। ऐसा भी सुनने में आया है कि इसे सबसे पहले भजनलाल बुकसेलर द्वारा आर्ट प्रेस सिन्ध ने 'काकोरी षड्यन्त्र' शीर्षक से छापा था । फिर वर्षों बाद पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयास से इस आत्म कथा का पुनर्जन्म हुआ। बिस्मिल जी की गिरफ्तारी और फाँसी के बाद उनके परिवार की जो दयनीय दशा हुई उसका वर्णन उनकी क्रान्तिकारी बहन शास्त्री देवी ने बड़े मार्मिक शब्दों में किया है।

बिस्मिल जी के परिवार ने बड़ी गरीबी में जीवन बिताया था, पर पुन: क्रान्ति में कूदने से पहले बिस्मिल जी ने साझे में कपड़े का कारखाना लगाकर स्थिति सुधार ली थी। जेल में जाने के बाद बिस्मिल जी ने अपने सांझीदार मुरारीलाल को लिखा कि जो कुछ पैसा मेरे हिस्से का हो मेरे पिता को दे देना। बार-बार लिखने पर भी उसने एक पैसा भी नहीं दिया। उल्टे अकड़ दिखाने लगा और पिताजी से लड़ पड़।

शाहजहाँपुर में रघुनाथ प्रसाद नामक एक वकील पर बिस्मिल जी माता - पिता की तरह विश्वास करते थे। इनके पास बिस्मिल जी के अपने सब अस्त्र-शस्त्र (पाँच) और धन (पाँच हजार रू.) रखे हुए थे। बिस्मिल जी ने वकील को लिखा कि मेरे रुपये मेरे पिताजी को और हथियार बहन शास्त्री देवी को दे देना। वह भी टालता रहा और कुछ नहीं दिया।

घर पर पुलिस का इतना आतंक छाया हुआ था कि उनके परिवार से कोई बात तक न करता था। उनके अपने मित्र उनके पास आते हुए डरते थे। ऐसे बुरे समय में महान क्रान्तिकारी पं. गणेश शंकर विद्यार्थी ने लगभग २००० रू. चन्दा करके बिस्मिल आदि साथियों का अभियोग लड़ने में सहयोग किया। बिस्मिल के पिता जी के लिए पं. जवाहरलाल ने ५०० रू. भिजवाये। विद्याथी जी ने इन्हें परिवार के लिए १५ रू. मासिक देते रहे। जब बहन शास्त्री देवी को पुत्र उत्पन्न हुआ, तब विद्यार्थी जी ने एक सौ रूपये सहायतार्थ भेजे और साथ ही यह भी कहलवा भेजा कि आप यह न समझें कि मेरा भाई नहीं है, हम सब आपके भाई हैं।

बिस्मिल जी की बहु ब्रह्मदेवी इनकी फाँसी (मृत्यु) से इतनी दु:खी हो गई कि ३-४ मास बाद ही इस असह्य शोक से पिण्ड छुडाने के लिए विष खाकर मर गई। थोडे दिन बाद ही इनका छोटा भाई रमेश बीमार पड़ गया। (संभवत: सुशीलचन्द्र फाँसी से पहले ही चल बसा था।) रमेश की चिकित्सा धन के अभाव में (डाक्टर ने दो सौ रू. मांगे थे) ठीक से न हो पाई और वह भी चल बसा। अब घर में खाने को दाने और पहनने को कपडे न थे। ऐसी अवस्था में उपवास के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। अन्त में उपवास करते-करते पिता (श्रीमुरलीधर) जी भी दु:खों की गठरी माता (मूलमंत्री देवी) जी के सिर पर रखकर

इस संसार को छोड़ चले। माता जी पर विपत्ति का पहाड टूट पड़ा। इसके एक महीने बाद बहन शास्त्री देवी भी विधवा हो गई। इनके पास एक पुत्र तीन साल का था।

अपने तीन तोले के सोने के बटन को बेचकर माता जी ने दो कोठडियाँ बनवाई। उनमें से एक कोठडी आठ रूपये मासिक किराये पर दे दी। शास्त्री देवी ने एक डाक्टर के यहा मासिक छह रूपये में खाना बनाने का काम किया। फिर भी एक समय कभी - कभी खाना मिलता था। बच्चा स्याना हुआ, तो माता जी ने सबसे फरियाद की कि कोई इस बच्चे को पढा दो, कुछ कर खएगा। पर शाहजाहँपुर में किसी ने पुकार नहीं सुनी। तब तक शास्त्री देवी का देव पुरुष भाई पं. गणेश शंकर विद्यार्थी भी शहीद हो चुका था। २५ मार्च १९३१ को कानपुर में महहबी अन्धे मुस्लिमों की भीड़ ने छुरे कुल्हाछे मारमारकर उन्हे बेरहमी से मारा था। शास्त्री देवी ने जैसे - तैसे करके बेटे को पांचवीं तक पढाया। फिर वह मजदूरी करने लगा। पर इस शहीद परिवार को देश का समाज अपराधी की तरह देख रहा था।

माता जी अन्न - वस्त्र के अभाव में जैसे-तैसे दिन गुजार रही थी। एक दिन शीतकाल का समय था। माता जी अपनी कोठडी में फटा सा कोट लपेटे हुए बैठी थी। इतने में बिस्मिल जी के क्रान्तिकारी साथी विष्णु शर्मा जेल से रिहा होकर माता जी के दर्शनों के लिए आ पहुंचे। वीर माता जी की यह दुर्दशा देखकर बहुत हैरान, दु:खी व देश वासियों पर क्रोधित हुए। उन्हे लाखों शाप दिये और अपना कम्बल उतार कर माता को उढा दिया। फिर बहुत कोशिश करके विष्णु शर्मा ने यू.पी. सरकार द्वारा स्थापित शहीद परिवार सहायक फण्ड में से माता जी की पेंशन (६०रू.) बंध वाई। इससे माता जी के साथ शास्त्री देवी के परिवार (लडका व बहू) का भी गुजारा होने लगा। पर १३ मार्च १९५६ को माता जी महाप्रयाण कर गई। पेंशन बन्द होने से शास्त्री देवी के परिवार की फिर दुर्दशा हो गयी। अन्न-वस्त्र के अभाव में जीवन दुभर हो गया। इनका लड़का कुसंग में फँसकर घर से भाग गया। महीने तक उसका कुछ पता न चला। एक दिन दोनों सास-बहू सलाह कर रही थी कि चलो गंगा जी में डूब जाएं, तभी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा भेजे गये चतुर्वेदी ओंकार नाथ पाण्डे ने कोसमा गांव जाकर देखा कि ये फटे कपडे पहने हुई थी और घर में लगभग ५ किलो अन्न था। पाण्डे जी ने बहन जी को ५ रू. दिये और बनारसीदास जी को सारा हाल लिखा। उन्होने इनकी सहायता के लिए अपील निकाली। छोटे बड़े सबसे सहयोग लेकर बनारसी दास जी ने बहन जी की सहायता की और लिखा कि आप संकोच न करें, यह पैसा आपका ही है। आप कपडा बनवा लीजिए। अन्न भी लेकर रख लीजिए। अब आप मुसीबत न उठाए। बहुत दु:ख आपने सहे। मैं आपको दु:ख न होने दुँगा। सम्भवत: बनारसीदास जी की अपील पढकर ही गुरुकुल झज्जर के आचार्य भगवान देव (स्वामी ओमानन्द) जी अप्रैल १९५९ में कोसमा (मैनपुरी) गये। बिस्मिल जी के हवन कुण्ड आदि ऐतिहासिक धरोहर के रूप में गुरुकुल में ले आये। एक वर्ष के लिए बहन जी की ५० रू. मासिक वृत्ति बांध दी। गुरुकुल के उत्सव पर भी वे बहन जी को बुलवाकर सम्मानित करते रहे। पं. बनारसीदास जी ने बहुत कोशिश करके बहन जी की पेंशन (४० रू.) करवाई (१९६० ई.)

पं. रामप्रसाद बिस्मिल जैसे चरित्रवान राष्ट्र भक्त के त्याग व बलिदान को पहचानने मे भारतवासियों ने इतनी देर लगा दी। जबकि श्री सुधीर विद्यार्थी के अनुसार तुर्की के राष्ट्रपति मुस्तफा कमाल पाशा ने तो १९३७ में बसे नये जिले (केन्या से आये विस्थापितों के लिए) का नाम ही भारत के इस महान शहीद के नाम पर (बिस्मिल जिला' रख दिया था और इस जिले के अन्तर्गत इसका मुख्यालय बिस्मिल शहर के नाम से जाना जाता है। तभी तो कवि को कहना पडा-

अच्छाईयों की चर्चा जिनकी जहान में है।
उनका निवास अब भी कच्चे मकान में है।।

- आट्टा, पानीपत (हरयाणा)

'ऋषि दयानन्द द्वारा वेदोद्धार सहित अन्धविश्वास एवं कुरीतियों को दूर किया था'

❑ मनमोहन कुमार...✍

प्रकाश करने की आवश्यकता वहाँ होती है जहाँ अन्धकार होता है। जहाँ प्रकाश होता है वहाँ दीपक जलाने वा प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं होती। हम महाभारत काल के उत्तरकालीन समाज पर दृष्टि डालते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा समाज अनेक अज्ञान व अविद्यायुक्त मान्यताओं के प्रचलन से ग्रस्त था। यदि इन अविद्यायुक्त अन्धविश्वासों पर दृष्टि डाली जाये तो हमें इसका कारण वेदज्ञान के प्रचार का न होना, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष्, मृतक श्राद्ध तथा अवतार आदि की कल्पना व व्यवहार मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। ईश्वर का वास्तविक स्वरूप हमें चार वेदों व उपनिषद आदि ग्रन्थों से प्राप्त होता है। वेदों का ज्ञान स्वयं सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर से ही सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को मिला है। वेदों में ईश्वर ने स्वयं अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्यान में परमात्मा ने स्वयं को अजन्मा, काया से रहित तथा नस-नाड़ी आदि के बन्धनों से रहित बताया है। अतः ईश्वर के मनुष्य के रूप में अवतार लेने व होने का खण्डन स्वयं ईश्वरीय ज्ञान वेदों से होता है। परमात्मा ने इस सृष्टि व ब्रह्माण्ड को बनाया है। ऐसा उसने अपने सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, अनादि, नित्य, निराकार, सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी स्वरूप से किया है। क्या यह कार्य छोटा कार्य था? यदि परमात्मा निराकारस्वरूप से सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय आदि कार्य कर सकते हैं तो वह निश्चय ही रावण, कंस, दुर्योधन जैसे साधारण शरीरधारी जीवों का प्राणोच्छेद भी कर ही सकते हैं। आज भी प्रतिदिन वह बिना अवतार लिए लाखों वा करोड़ों लोगों व प्राणियों का प्राणोच्छेद करते ही हैं।

देश देशान्तर में जब कहीं युद्ध आदि होते हैं तो उसमें एक समय में ही सैकड़ों वा हजारों लोग मरते हैं। उन सबका प्राणोच्छेद व मृत्यु ईश्वर द्वारा उनकी आत्मा को उनके शरीरों से पृथक करने पर ही होती है। अतः ईश्वर का अवतार लेना वेद सहित तर्क एवं युक्तियों से सिद्ध नहीं होता। ईश्वर विश्व व सृष्टि में जो भी कार्य कर रहा है, वह सब बिना किसी अवतार को धारण किये कर सकता है। अतः अवतार लेने व उसकी मूर्तिपूजा करने का विचार व धारणा सत्य के विपरीत एवं वेदविरुद्ध होने से विश्वास करने योग्य नहीं है। ऋषि दयानन्द को मूर्तिपूजा की निरर्थकता का बोध अपनी आयु के चौदहवें वर्ष में शिवरात्रि के अवसर पर शिवरात्रि की पूजा करते हुए हुआ था। मूर्तिपूजा सर्वव्यापक व सच्चिदानन्द की पूजा नहीं है, यह बात उनके समाधि अवस्था को प्राप्त होने, ईश्वर का साक्षात्कार करने तथा वेदों का सर्वांगरूप में अध्ययन करने पर सत्य सिद्ध हुई थी। इस कारण समाज को अज्ञान व अन्धविश्वासों से हो रहे पतन से निकाल कर मनुष्य की लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करने कराने के लिए उन्होंने मूर्तिपूजा व अवतारवाद का विरोध किया। इसके साथ ही ऋषि दयानन्द ने ईश्वर के सत्यस्वरूप की उपासना का धारणा व ध्यान की विधि से स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए विधान किया जो कि सृष्टि के आरम्भ से न केवल गृहस्थ आदि सामान्य जन अपितु ऋषि, मुनि व महर्षि करते चले आ रहे थे। अति प्राचीन काल में ऋषि पतंजलि ने ईश्वर की उपासना पर विचार कर वेदानुकूल ईश्वर की उपासना का ग्रन्थ ''योग दर्शन''

रचा था। इसी योगदर्शन प्रदत्त अष्टांग-योग की विधि से उपासना करने से ईश्वर का साक्षात्कार एवं मोक्ष की प्राप्ति उपासक व साधक मनुष्य की आत्मा को होती है।

ऋषि दयानन्द ने सत्य का प्रचार मौखिक उपदेशों व व्याख्यानों के द्वारा किया। इसके साथ ही उन्होंने अनेक विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना भी की। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा संस्कार विधि उनकी प्रमुख रचनायें हैं। वेदों का भाष्य उनका सबसे महत्वपूर्ण एवं महान् कार्य है। स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य से वेद के नाम पर प्रचलित सभी मिथ्या विश्वासों का खण्डन होता है तथा सत्य विश्वासों का प्रकाश होता है। स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य इतिहास में अपूर्व है। यह भावी सभी वेदभाष्यकारों के लिये पथप्रदर्शक है। उनके भाष्य से ही विद्वानों को वेदार्थ शैली का ठीक-ठीक ज्ञान होता है। वह आदर्श वेदभाष्यकार हैं। इस प्रकार से ऋषि दयानन्द ने देश देशान्तर में प्रचलित अविद्या व अन्धविश्वासों को दूर करने का प्रयत्न किया।

ऋषि दयानन्द ने सभी अन्धविश्वासों का आधार मूर्तिपूजा को माना है। उनके अनुसार ईश्वरीय ज्ञान वेदों में मूर्तिपूजा का विधान कहीं नहीं है और न ही यह ईश्वर की उपासना के लिये तर्क एवं युक्ति से पूर्ण है। मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध होने तथा इसकी पुष्टि करने के लिये उन्होंने दिनांक १६ नवम्बर, सन् १८६९ को काशी के २७ से अधिक शीर्ष पण्डितों से अकेले शास्त्रार्थ किया था। यह शास्त्रार्थ आज भी लेखबद्ध उपलब्ध होता है। इसको लेखबद्ध भी सम्भवत: ऋषि दयानन्द ने स्वयं ही किया है। इसे पढ़कर मूर्तिपूजा पर हुए शास्त्रार्थ में काशी के पण्डितगण किसी वेद मन्त्र, तर्क एवं युक्ति को अपने पक्ष में नहीं दे पाये थे जिससे इसका करना वेद व ज्ञान विज्ञान सम्मत सिद्ध होता। ऋषि दयानन्द ने यह भी सूचित किया है कि अट्ठारह पुराण ऋषि वेद व्यास की रचनायें नहीं हैं अपितु इनकी रचना ऋषि वेदव्यास जी मृत्यु के बाद मध्यकाल में की गई है। यह पुराण, प्राचीन पुराण ग्रन्थ न होकर अर्वाचीन ग्रन्थ है। प्राचीन पुराण ग्रन्थों का वास्तविक नाम वेद, ब्राह्मण, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों पर सिद्ध होता है जो महाभारत युद्ध से भी प्राचीन हैं तथा जिनकी रचना प्राचीन वेद के ऋषियों ने वेदों के अर्थों के प्रचार प्रसार के लिये की थी।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश को चौदह समुल्लासों में लिखा है जिसके प्रथम १० समुल्लासों में वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों पर प्रकाश डालकर उनके सत्य व मान्य होने का मण्डन किया गया है। सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध के चार समुल्लास अवैदिक मतों की समीक्षा व खण्डन में लिखे गये हैं जिनमें मत-मतान्तरों में विद्यमान अविद्या व अज्ञान युक्त कथनों व मान्यताओं की समालोचना की गई है। इस समालोचना से वेदों की महत्ता सिद्ध होती है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ऋषि दयानन्द का चार वेदों के भाष्य की भूमिकास्वरूप लिखा गया अपूर्व व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चार वेदों में सब सत्य विद्याओं के होने का दिग्दर्शन कराया गया है। इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि वेद केवल यज्ञ आदि करने कराने के ग्रन्थ नहीं है जैसा कि कुछ मध्यकालीन आचार्यों ने समझा था। वेदों में सब सत्य विद्यायें होने से यह मनुष्यों के आचार विचार

व धर्म के ग्रन्थ है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के ज्ञान व आचरण को ही मनुष्य का परमधर्म बताया है और इसके नित्य प्रति पठन पाठन सहित प्रचार करने की प्रेरणा की है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के प्रचार प्रसार द्वारा देश व समाज से अविद्या दूर करने के लिए १० अप्रैल सन् १८७५ को आर्यसमाज नाम से एक संगठन व आन्दोलन की स्थापना की थी। यह आन्दोलन अज्ञान दूर करने तथा ज्ञान व विद्या के प्रचार करने का आन्दोलन है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सभी अन्धविश्वासों व मिथ्या परम्पराओं का खण्डन भी किया था। उन्होंने स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन एवं वेदप्रचार का अधिकार दिया। मूर्तिपूजा के स्थान पर निराकार ईश्वर की पूजा व ध्यान करना सिखाया। ऋषि ने दैनिक यज्ञ व अग्निहोत्र को सबके लिये करणीय एवं लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का आधार बताया वा सिद्ध किया। ऋषि दयानन्द ने ही सबसे पहले देश की आजादी के लिये प्रेरणा की थी और ऐसा करते हुए स्वदेशीय राज्य को सर्वोपरि उत्तम बताया था।

ऋषि दयानन्द के अनुयायियों ने सबसे अधिक क्रान्तिकारी व हिंसा रहित शान्तिपूर्ण आन्दोलनों में भाग लिया। देश से अविद्या दूर करने के लिये आर्यसमाज ने देश में डीएवी स्कूल व कालेज सहित वेद वेदांग के केन्द्र गुरुकुल स्थापित किये। समाज से जन्मना जातिवाद तथा छुआछूत को दूर करने का आन्दोलन किया। बाल विवाह को समाप्त कराया तथा कम आयु की विधवाओं के पुनर्विवाह को स्वीकार किया। ऋषि दयानन्द ने पूर्ण युवावस्था में युवक व युवतियों के विवाह का समर्थन किया और इसके प्रमाण भी वेद व वेदानुकूल ग्रन्थ मनुस्मृति आदि से दिये। ऋषि दयानन्द ने जन्मना जातिवाद को दूर कर उसके स्थान पर गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारिक वैदिक वर्ण व्यवस्था का प्रचार किया। सद्गृहस्थ सहित वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम का सत्यस्वरूप भी देश व समाज के समाने रखा। देश की उन्नति में सर्वाधिक योगदान यदि किसी एक व्यक्ति व संगठन का है तो वह व्यक्ति व संगठन ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज ही हैं। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के महत्व से परिचित होने के लिये देशवासियों को ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश तथा उनका जीवनचरित्र विशेष रूप से पढ़ने चाहिये। ऋषि के अन्य ग्रन्थ पढ़ने से भी मनुष्य की सभी शंकायें व भ्रान्तियां दूर होती हैं। हम अनुमान से कह सकते हैं कि यदि ऋषि दयानन्द वेदों का उद्धार वा वेदों का प्रचार कर अन्धविश्वासों तथा कुरीतियों का खण्डन कर समाज सुधार का कार्य न करते तो देश की वह उन्नति, जो आज हम देख रहे हैं, कदापि न होती। ऋषि दयानन्द ने वेदों के आधार पर नये समाज व देश का निर्माण करने की नींव रखी थी। जब तक देश देशान्तर से अज्ञान व अविद्या पूरी तरह से दूर नहीं हो जाते, उनका कार्य अधूरा ही रहेगा।

-१९६ चुक्खूवाला-२, देहरादून

पञ्चमहायज्ञ

महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक मनुष्य के लिए यज्ञ के पाँच प्रकार बताये है, जिन्हें पञ्चमहायज्ञ के नाम से जाना जाता है। इन पञ्चमहायज्ञों की गणना नित्यकर्म में की गई है। इनका फल बताते हुए महर्षि लिखते हैं कि- **'ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से, शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना। उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।'**

- पञ्चमहायज्ञविधि

जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी

❑ डॉ. प्रशस्यमित्रशास्त्री...✍

पथि पथि विचरति दस्युसमूहः,
निशि विचरति चौराणां व्यूहः,
दुष्टजनाः शासन-भय-मुक्ताः,
जनता विश्वासेन वियुक्ता,
किं करोतु क्व च यातु वराकः,
किं कर्त्तव्य-विमूढः प्रहरी।। **जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी॥१॥**

धनं विना नहि सिध्यति कार्यम्,
किमपि साम्प्रतं यदि मम देशे,
क्व नु गच्छेयम्? कं कथयेयम्,
मज्जति मनः सर्वथा क्लेशे,
पश्य सर्वतो दुःखदायिका,
उत्कोचानां प्रभवति लहरी॥ **जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी॥२॥**

दर्शयन्ति मिथ्या बहुभक्तिम्,
वञ्चकजना यतीनां वेशे,
गृहे मन्दिरे पूजनस्थले,
श्रद्धाभक्तिर्नैव महेशे,
पुनरपि यच्छति महाप्रतिष्ठाम्,
वृत्तिरियं सर्वदा मधुकरी॥ **जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी॥३॥**

क्व गन्तासि? कुत आयातः?
का ते जननी? कस्ते तातः?
वृथा रतिर्नश्वरे शरीरे,
भज गोविन्दम् इत्युपदिश्य,
धन-काञ्चनमादाय साधुभिः,
वाग् निगद्यते परान् हितकारी॥ **जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी॥४॥**

बाला नैव साम्प्रतं प्रबलाः,
बलात्कार-भयजाता अबलाः,
स्वच्छन्दा विचरन्ति पिशाचाः,
प्रभो! शृणुष्व प्रार्थनामधुना,
इयं स्थितिर्वर्त्तते दुःखकरी॥ **जयताद् षड्विंशतिर्जनवरी॥५॥**

(साहित्याकादम्या राष्ट्रपतिसम्मानेन च सम्मानितः)

- बी २९, आनन्दनगरम्, रायबेरली

योगदर्शनशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्यः...

अवतरणिका-

स खल्वयं द्विविधः - उपायप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च। तत्रोपायप्रत्ययो योगिनां भवति।

पदार्थव्याख्या-

सः=वह **अयम्**=यह असम्प्रज्ञात समाधि **खलुः**=निश्चय से ही **द्विविधः**=दो प्रकार की होती है। **उपायप्रत्ययः**=उपायप्रत्यय **च**=और **भवप्रत्ययः**=भवप्रत्यय। **तत्र**=वहाँ **उपायप्रत्ययः**=उपायप्रत्यय वाली असम्प्रज्ञात समाधि **योगिनाम्**=विदेह एवं प्रकृतिलय योगियों से भिन्न योगियों की **भवति**=होती है।

व्याख्या-

यह असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती हैं - १. उपायप्रत्यय, २. भवप्रत्यय। इनमें से उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञातसमाधि विदेह एवं प्रकृतिलय योगियों से भिन्न योगियों में होती है।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्

(योगदर्शन.-१/१९)

पदार्थव्याख्या-

विदेहप्रकृतिलयानाम्=विदेह और प्रकृतिलय नामक विद्वानों को होने वाली समाधि **भवः**=शरीरादि संसार **प्रत्ययः**=उसका जो यथार्थ ज्ञान, उससे जो समाधि है।

सूत्रार्थ-

शरीर तथा शरीर प्राप्ति के हेतु विषयक ज्ञानमात्र शेष रहता है। विदेह तथा प्रकृतिलयसंज्ञक योगियों के लिये।

व्यासभाष्य-

विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः। ते हि स्वसंस्कार-मात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्यपदमिवानुभवन्तः स्वसंस्कार-विपाकं तथा जातीयकमतिवाहयन्ति। तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्यपदमिवानुभवन्ति, यावन्न पुरावर्ततेऽधिकारवशाच्चित्तमिति।

व्यासभाष्य पदार्थ व्याख्या-

विदेहानाम्=विदेह नामक **देवानाम्**=विद्वानों की समाधि **भवप्रत्ययः**=संसार के ज्ञान के कारण होती है, **हि**=क्योंकि **ते**=वे विदेह नामक विद्वान् **स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन**=अपने संस्कार मात्र से उपयोग में आने वाले **चित्तेन**=चित्त के द्वारा **कैवल्यपदम्**=कैवल्यपद के **इव**=समान **अनुभवन्तः**=अनुभव करते हुए **स्वसंस्कार**=अपने संस्कारों के **तथाजातीयकम्**=उसी प्रकार के **विपाकम्**=फलों को **अतिवाहयन्ति**=भोगते हुए समाप्त करते हैं **तथा**=उसी प्रकार **प्रकृतिलयाः**=प्रकृतिलय नामक विद्वान् **समाधि कारे**=चित्त के निवृत्त न होने पर ही **चेतसि**=चित्त के **प्रकृतिलीने**=प्रकृति में लीन होने पर **कैवल्यपदम्**=कैवल्य के **इव**=समान **अनुभवन्ति**=अनुभव करते हैं, **यावत्**=जब तक **चित्तम्**=उनका चित्त **अधिकारवशात्**=अधिकारवश **न**=नहीं **पुनरावर्त्तते**=फिर से नहीं लौटता **इति**=ऐसा।

व्यासभाष्य व्याख्या-

विदेह नामक देवों की 'भवप्रत्यय' नामक असम्प्रज्ञात समाधि होती है। वे अपने संस्कारमात्र अवशिष्ट चित्त से कैवल्य पद जैसा अनुभव करते हुए अपने संस्कारों के अनुरूप फलों को भोगते हुए समाप्त करते हैं। उसी प्रकार प्रकृतिलय अर्थात् भवप्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि वाले प्रकृतिलीन योगी भी अकृतकृत्य चित्त के प्रकृति में लीन होने पर कैवल्यपद जैसा अनुभव करते रहते हैं, जब तक कि उनका चित्त भोग तथा अपवर्ग के सिद्ध न करने के कारण फिर से लौकिक स्थिति में नहीं आता।

शेष अग्रिम अंक में...

स्मृति-शेष...

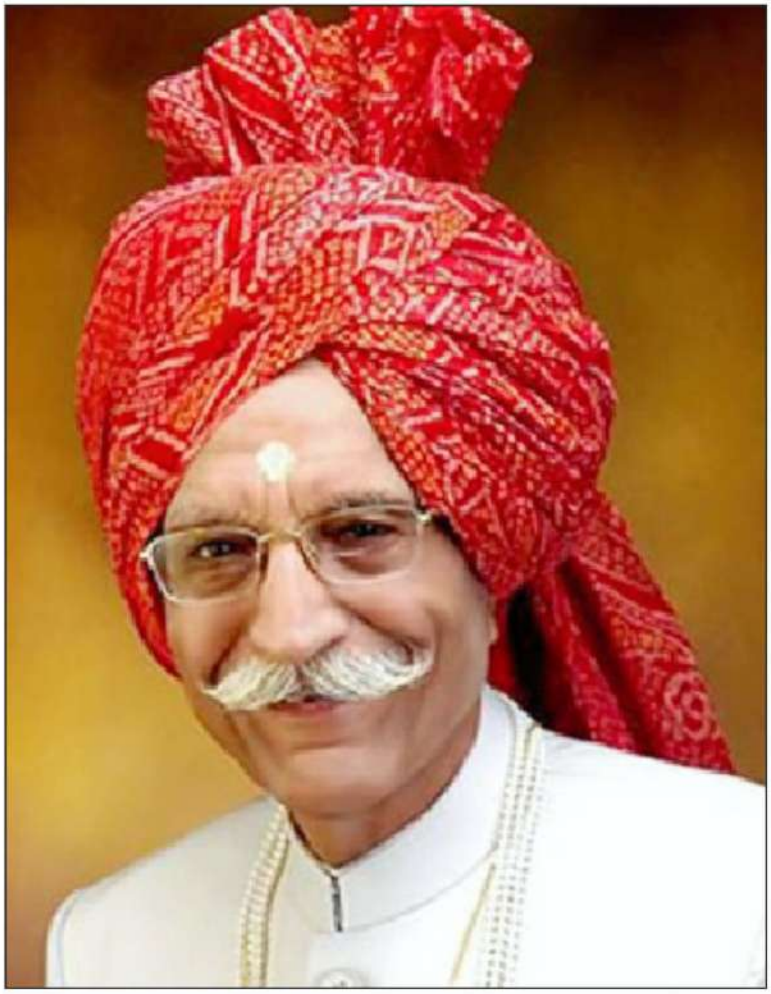

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

की साक्षात्प्रतिमूर्ति, मानवता के संरक्षक

महाशय धर्मपाल जी (MDH) को

गुरुकुल परिवार की ओर से

विनम्र श्रद्धांजलि...

पंजीयन संख्या : **UTTBIL/2008/23546** डाक पंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2019-2021

पतंजलि®
प्रकृति का आशीर्वाद

करोड़ों देशवासियों का भरोसेमन्द हर्बल टूथपेस्ट

दन्त कान्ति

दन्त कान्ति के लाभ

✓ लौंग, बबूल, नीम, अकरकरा, तोमर, बकुल आदि बेशकीमती जड़ी बूटियों से निर्मित दन्त कान्ति, ताकि आपके दाँतों को मिले लंबी उम्र व असरदार प्राकृतिक सुरक्षा।

✓ पायरिया, मसूड़ों की सूजन, दर्द व खून आना, सेंसिटिविटी, दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन आदि को दूर करे।

✓ कीटाणुओं से लम्बे समय तक बचाकर दे दाँतों को प्राकृतिक सुरक्षा कवच।

पूरी दुनिया अब नैचुरल प्रोडक्ट्स को अपना रही है
आप भी पतंजलि के नैचुरल प्रोडक्ट्स अपनाइए और प्रकृति का आशीर्वाद पाइए

आवाहन– राष्ट्र के जागरुक व्यापारियों व ग्राहकों से हम विनम्र आवाहन करते हैं कि करोड़ों देश भक्त भारतीयों की तरह, आप भी पतंजलि के उत्पादों को अपनी दुकानों व दिलों में सर्वोच्च प्राथमिकता देकर जन–जन तक पहुँचाएं और देश की सेवा व समृद्धि में योगदान दें। जिससे महात्मा गाँधी, भगत सिंह व राम प्रसाद बिस्मिल आदि सभी महापुरुषों के स्वदेशी अपनाने के सपने को मिलकर साकार कर सकें।

पतंजलि आयुर्वेद के लगभग 500 उत्पाद हैं, ये शुद्ध खाद्य उत्पाद व हर्बल सौन्दर्य उत्पाद हमारे पतंजलि स्टोर्स के साथ ओपन मार्केट की दुकानों पर भी उपलब्ध हैं।

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

.....

डाक टिकट

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ- गुरुकुल, दून वाटिका-२ पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति प्रिन्टिंग प्रेस, ३५ कांवली रोड, देहरादून से मुद्रित।
सम्पर्क सूत्र-9411106104, arsh.jyoti@yahoo.in

मुद्रण तिथि - ३ जनवरी २०२१। डाक प्रेषण तिथि - ८ जनवरी २०२१। कुल पृष्ठ संख्या-२८।